* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

भगवती भ्रामरी देवी
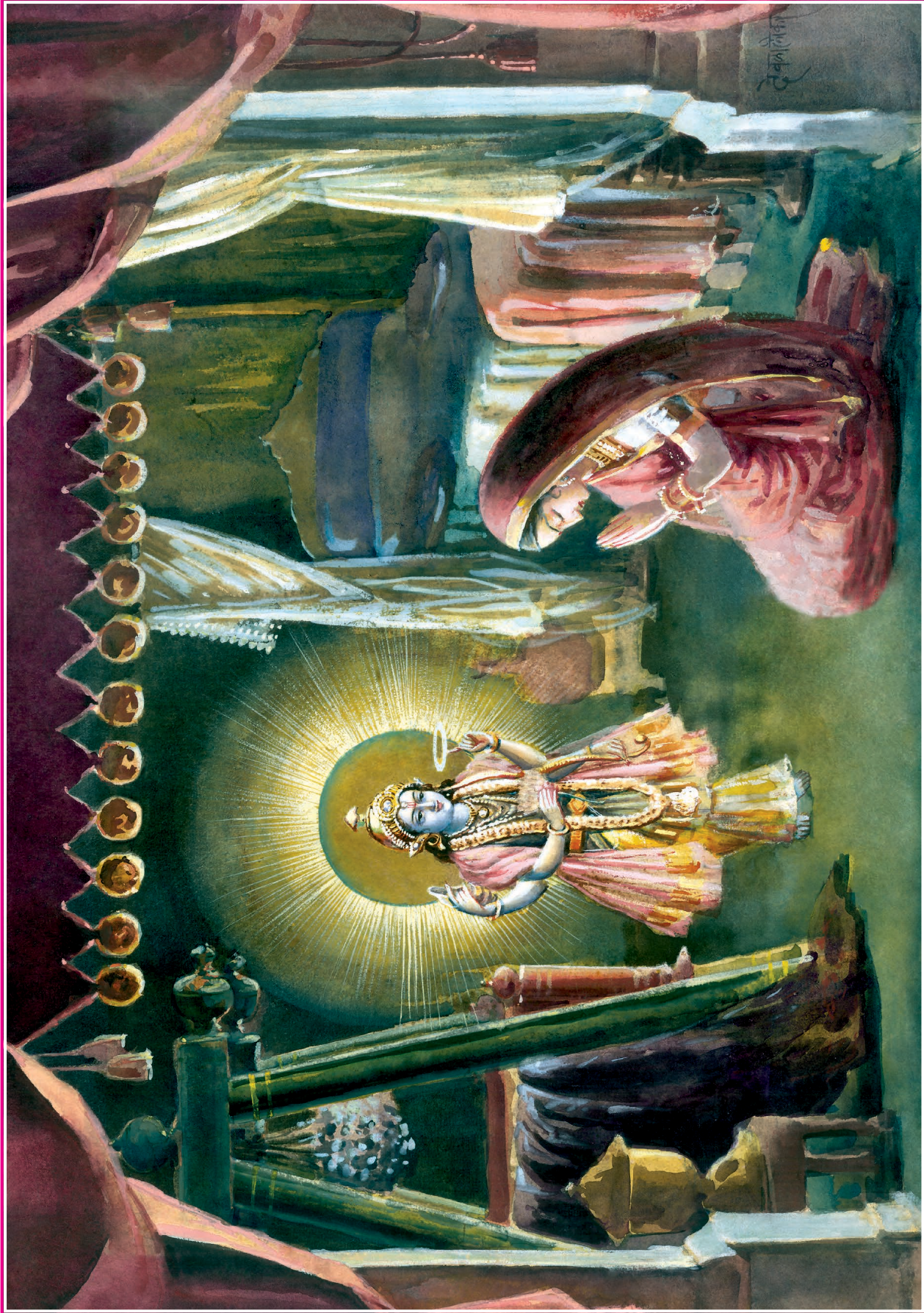
भगवान् श्रीरामका चतुर्भुजरूपमें प्राकट्य

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

वर्ष ९०

गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, अप्रैल २०१६ ई०

संख्या ४

पूर्ण संख्या १०७३

'भए प्रगट कृपाला'

सुर समूह बिनती करि पहुँचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम॥

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी। हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी। भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता। माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता। सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै। मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै। कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा। कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा। यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥ [श्रीरामचरितमानस]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, अप्रैल २०१६ ई०

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹२००
सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹१०००
सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — **वार्षिक** US$ 45 (₹2700), **पंचवर्षीय** US$ 225 (₹13500) — **Us Cheque Collection Charges 6$ Extra**

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु- gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

आज हम देखते हैं, एक राष्ट्र दूसरेका विरोधी है, एक जाति दूसरीको पददलित करनेपर तुली हुई है, एक समाज अपने साथ-साथ चलनेवाले दूसरे समाजको कोसता है और एक व्यक्ति दूसरेको नीचा दिखानेकी भरपूर चेष्टा करता है। दूसरी ओर—यद्यपि पहलेकी तुलनामें बहुत ही कम हैं, पर ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं कि एक राष्ट्र दूसरेका मित्र है, एक जाति दूसरी जातिका अभ्युत्थान चाहती है, एक समाज दूसरे समाजका आदर करता है और एक व्यक्ति दूसरेको ऊपर उठानेके लिये अपना सर्वस्व दे डालता है। एक ओर अशुभ प्रवृत्तिका प्रवाह है, दूसरी ओर शुभका। प्रत्येक सद्भावना रखनेवाला मानव यही चाहेगा कि शीघ्र-से-शीघ्र जगत्में अशुभ प्रवृत्तिका अन्त हो जाय और शुभका अधिक-से-अधिक तथा शीघ्र-से-शीघ्र विस्तार हो; किंतु इस अशुभका विनाश एवं शुभका विस्तार तबतक सम्भव नहीं, जबतक इस हलचलसे जुड़े हुए हम इसीके साथ बह रहे हैं। इसके लिये तो हमें इससे ऊपर उठकर इसी हलचलके बीचमें अवस्थित, पर इससे सर्वथा परे प्रभुको अपने जीवनका आधार बनाना पड़ेगा, सबके केन्द्रमें विराजित प्रभुका आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा। तभी अशुभके अन्त एवं शुभके प्रसारमें हम सहायक बन सकेंगे।

कहनेका तात्पर्य यह है कि चाहे हमारा उद्देश्य अपनेतक ही सीमित हो, हम केवल अपनी ही सुख-शान्ति चाहते हों अथवा हमारा उद्देश्य अत्यन्त विशाल हो—समाजकी, जातिकी, राष्ट्रकी और सारे विश्वकी सुख-शान्ति हमारा लक्ष्य हो—इन दोनों परिस्थितियोंमें जबतक हम इनके लिये किये जानेवाले बाहरी प्रयासपर ही निर्भर करते हैं—प्रभुपर नहीं, इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये जो-जो चेष्टाएँ होती हैं, उन्हींपर हमारा ऐसा विश्वास है—इन्हें करते रहो, केवल इनके करते रहनेसे ही हमारे उद्देश्यकी सिद्धि हो जायगी, प्रभुकी कृपाकी हमें क्या आवश्यकता है। जबतक केवल रजोमयी प्रवृत्तियों (हलचल)-में ही हम तन्मय हो रहे हैं, प्रभुको भूले हुए हैं—तबतक तो हम भटकते ही रहेंगे। किसी भी शुभ उद्देश्यकी पूर्ति तबतक हो ही नहीं सकती, जबतक प्रभु हमारे आधार नहीं बन जाते।

यह बात अच्छी तरह सदा ध्यानमें रखनेकी है कि हम चाहे अत्यन्त शुभ-से-शुभ उद्देश्यको लेकर ही किसी सत्कर्ममें प्रवृत्त क्यों न हुए हों, यदि प्रभुका आश्रय किये बिना ही हम आगे बढ़ना चाहते हैं तो यह निश्चित है कि हमारा शुभ उद्देश्य बदलकर धीरे-धीरे किसी अशुभमें परिणत हो सकता है। साथ ही उस सत्कर्ममें भी अनेकों त्रुटियाँ आ घुसेंगी और वह सत्कर्म भी बदलते-बदलते अन्तमें सम्भवतः पाप-कर्म बन जाय। ऐसा इसीलिये हो सकता है कि समस्त शुभ विचार, समस्त सद्भाव आते हैं इनके अनन्त भण्डार प्रभुकी ओरसे। जहाँ प्रभुका सम्बन्ध नहीं, वहाँ ये आयेंगे कहाँसे? रहेंगे कैसे? जहाँ प्रभु नहीं, वहाँ शुभका सौरभ भी नहीं, सत्त्वका प्रकाश भी नहीं। वहाँ तो रजका बवण्डर है, तमोगुणका अँधेरा है। वृक्षसे टूटा हुआ एक सुन्दर पुष्प जैसे बवण्डरमें पड़कर धूलिसे सन जाता है, अँधेरेमें नाचने लगता है, वैसे ही प्रभुका आश्रय छोड़ देनेपर हम संसारके प्रवाहमें पड़कर रजोगुणी-तमोगुणी प्रवृत्तियोंमें उलझ जाते हैं। उन्हींमें चक्कर काटने लगते हैं। आवश्यकता है कि हम संसारके बवण्डरसे हटकर, ऊपर होकर, प्रभुकी ओर मानसिक वृत्तियोंको मोड़ दें।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

श्रीभ्रामरी देवीकी कथा

पूर्व समयकी बात है, अरुण नामक एक महान् पराक्रमी दैत्य था। उसने देवताओंपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे हिमालयपर जाकर पद्मयोनि ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये हजारों वर्षोंतक कठोर तपस्या की। ब्रह्माजीने उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती गायत्रीके साथ उसे दर्शन दिया और इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहा। अरुणने कभी न मरनेका वर माँगा।

अरुणकी बात सुनकर ब्रह्माजीने उसे समझाते हुए कहा—'संसारमें जन्म लेनेवाला निश्चय ही मृत्युको प्राप्त होता है। जब मेरी भी आयु निर्धारित है, फिर मैं तुम्हें न मरनेका वर कैसे दे सकता हूँ? अत: तुम कोई दूसरा वर माँगो, जो मैं तुम्हें दे सकूँ।' अरुणने कहा—'प्रभो! फिर मुझे अस्त्र-शस्त्र, स्त्री-पुरुष, पशु, देव, दानव किसीके भी हाथसे न मरनेका वर प्रदान करें।' ब्रह्माजी 'तथास्तु' कहकर ब्रह्मलोक चले गये।

वर पानेके बाद अरुणने विशाल दानवी सेनाके साथ इन्द्रकी पुरी अमरावतीको घेर लिया। बात-की-बातमें अरुणने समस्त देवताओंको परास्त कर दिया। उसने तपस्याके प्रभावसे अनेक रूप बना लिये और सूर्य, चन्द्रमा, यम, वायु तथा अग्निके अधिकारोंको पृथक्-पृथक् अपने हाथोंमें लेकर वह स्वयं सबका शासन करने लगा। अपने-अपने स्थानसे च्युत होकर देवता दीन अवस्थामें भगवान् शंकरकी शरणमें गये, किंतु ब्रह्माके वरदानके आगे वे भी कुछ करनेमें असमर्थ हो गये। उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ! तुम लोग भगवतीकी उपासना करो और किसी भी उपायसे अरुण दैत्यको गायत्री-जपसे विरत करनेकी चेष्टा करो।'

देवताओंके कहनेपर देवगुरु बृहस्पति दैत्यराज अरुणको गायत्री-जपसे विरत करनेके उद्देश्यसे उसके पास गये और बोले—जो देवी हम लोगोंकी आराध्या हैं, उन्हींकी तो तुम भी आराधना कर रहे हो, फिर तो तुम हमारे ही पक्षधर हुए। बृहस्पतिकी यह बात सुनकर देवमायासे मोहित होकर अरुणने गायत्री-जप करना छोड़ दिया। इधर देवताओंकी उपासनासे प्रसन्न होकर भगवतीने उन्हें भ्रामरी देवीके रूपमें दर्शन दिया। उस समय उनके कमनीय विग्रहसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। उनके सभी अंग दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत थे। उनकी मुट्ठी अद्भुत भ्रमरोंसे भरी थी। वे करुणामयी देवी वर तथा अभय मुद्रा धारण किये हुए थीं। नाना प्रकारके भ्रमरोंसे युक्त पुष्पोंकी माला उनकी छवि बढ़ा रही थी। भगवतीका दर्शन प्राप्त करके सभी देवता परम प्रसन्न हुए। देवीने कहा—'देवताओ! अब तुमलोग निर्भय हो जाओ और यहाँ आनेका कारण बताओ। अपने भक्तोंके कष्टोंका निवारण करना मेरा प्रथम कर्तव्य है।' ब्रह्मादि देवताओंने उनकी नाना प्रकारसे स्तुति की। तदनन्तर देवताओंने भ्रामरी देवीसे अपने दु:खका कारण बताया और अरुण दैत्यके वधके लिये प्रार्थना की।

देवताओंकी आर्तवाणी सुनकर भगवती भ्रामरीने अपने हस्तगत भ्रमरोंको प्रेरित किया। उन असंख्य भ्रमरोंसे त्रिलोकी व्याप्त हो गयी। उस समय उन भ्रमरोंके कारण पृथ्वीपर अन्धकार छा गया। सब ओर केवल भ्रमर-ही-भ्रमर दृष्टिगोचर होने लगे। उन सम्पूर्ण भ्रमरोंने जाकर तुरंत सेनासहित अरुण दैत्यको छेद डाला। किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे उन विचित्र भ्रमरोंका निवारण न किया जा सका। सभी दैत्योंके प्राण उन भ्रमरोंके काटनेसे प्रयाण कर गये। अरुण भी अपने सहायकोंके साथ मृत्युको प्राप्त हुआ। अरुणकी मृत्युके साथ देवताओंके संकटका निवारण हुआ। देवताओंका कार्य सम्पन्न करके भगवती भ्रामरी वहीं अन्तर्धान हो गयीं। [**श्रीमद्देवीभागवत-महापुराण**]

सार बात

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्रत्येक माता-बहनों और भाइयोंको यह सोचना चाहिये कि हमारे मनसे कितने दुर्गुण मिटे तथा हमारे मनमें कितने सद्‌गुण-सदाचार आये और ईश्वरकी भक्तिका सिलसिला किस प्रकार शुरू हुआ। विचार करनेकी आवश्यकता है कि यदि आजके बीस वर्ष पहले अथवा दस वर्ष पहले जैसी स्थिति थी, वैसी ही आज भी है तो फिर अपना सुधार ही क्या किया? उसी समय दु:खोंका अत्यन्त अभाव करना चाहिये था। अस्तु, समय तो बहुत बीत गया, अब भी अपने दुर्गुणों-दुराचारोंको एकदम कुचल डालना चाहिये। सब प्रकारके दु:खोंका समूल नाश कर डालना चाहिये—समाप्त कर देना चाहिये। जो असली सुख—असली आनन्द है, उसे प्राप्त करनेका उपाय करना चाहिये। असली वस्तु वह है, जो सदा कायम रहे—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(गीता २।१६)

जो सत् होता है, उसका तो कभी अभाव नहीं होता और जो मिथ्या वस्तु होती है, उसका भाव नहीं होता। सत् वस्तु तो है आत्मा और नाश होनेवाली वस्तु है शरीर। शरीरसे अपना सम्बन्ध ही क्या? शरीर तो नाशवान् पदार्थ है और आत्मा अविनाशी है। जब इस प्रकारका अनुभव साधकको हो जाता है, तब शरीरके नाश होनेसे वह अपना नाश नहीं मानता, शरीरके नाश होनेसे कष्ट नहीं होता। खयाल करना चाहिये कि ईश्वरने हमें जो विवेक दिया है, बुद्धि दी है, उसका सदुपयोग करना चाहिये, उससे हमें विशेष लाभ उठाना चाहिये। ईश्वरने हम लोगोंको विवेक, ज्ञान एवं बुद्धि दी है उत्तरोत्तर उसे बढ़ानेके लिये, मुक्तिप्राप्तिके लिये; किंतु हमारी जो उस विषयमें चेष्टा नहीं है, यह कितनी मूर्खताकी बात है। जिस ज्ञान और बुद्धिसे परमात्माका तत्त्व-रहस्य जाना जा सकता है, मुक्ति हो सकती है, परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है; उस ज्ञान और बुद्धिको हम लिये बैठे रहें, उसकी उन्नति नहीं करें तो यह हमारी बहुत बड़ी मूर्खता है। हम लोगोंको सारे दु:खोंका, सारे क्लेशोंका एकदम नाश कर डालना चाहिये। सारे पापोंको—दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, आलस्य, प्रमाद एवं समस्त भोगोंको विषके समान समझकर इनका त्याग कर देना चाहिये।

उत्तम आचरण, उत्तम गुण, हृदयके उत्तम भाव, ईश्वरकी भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार एवं धर्मका पालन—इन सबको अमृतके समान समझकर हर समय सेवन करना चाहिये, हमेशा इसका आस्वादन करना चाहिये, मुग्ध होना चाहिये, उत्तरोत्तर खूब चेष्टा करनी चाहिये। हम लोगोंकी वर्तमानमें जो चेष्टा है, वह बहुत ही साधारण है, इसपर हम लोगोंको ध्यान देना चाहिये और अपने साधनमें तीव्रता लानी चाहिये, जिससे परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र हो जाय। हम लोग इस संसारके विषय-भोगोंको भोगनेके लिये नहीं आये हैं, इसे तो पशु-पक्षी भी भोगते हैं। हम आये हैं अपनी आत्माके उद्धारके लिये। यह हमारी नासमझी है कि हम अपनी आत्माके उद्धारको असम्भव समझकर, कठिन समझकर उससे उपराम-से हो रहे हैं। मनुष्यके लिये संसारमें कोई बात असम्भव है ही नहीं, कठिन है ही नहीं, जिसे मनुष्य कर न सके। यह दुर्लभ मनुष्य-योनि जो हम लोगोंको प्राप्त है, इससे हम लोगोंको विशेष लाभ उठाना चाहिये। कारण कि चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करते-करते जीवको परेशान देखकर भगवान्‌ने इसके आत्माके कल्याणके लिये, उद्धारके लिये इसे मनुष्य-शरीर दिया है। अत: जितने पदार्थ हैं, उनके बदले परमात्माको खरीद लेना चाहिये। यानी परमात्माकी प्राप्तिमें इन सबको खर्च कर देना चाहिये; क्योंकि जब हम मर जायँगे, तब इन पदार्थोंके साथ हमारा कोई सम्बन्ध ही नहीं रहेगा फिर हमारी मूर्खता ही सिद्ध होगी। इसलिये हमें यह काम शीघ्र ही बना लेना

चाहिये। मनुष्य-शरीर पाकर यदि अपना सुधार किये बिना हम यहाँसे विदा हों तो हमारे लिये यह बड़ा भारी लाँछन है। किसी कविने कहा है—

आये थे कुछ लाभको खोय चले सब मूल।
फिर जावोगे सेठ पै पले पड़ेगी धूल॥

तात्पर्य यह कि आये तो थे कुछ लाभके लिये, किंतु जो कुछ मूल लाये थे (मनुष्य-जन्मकी आयु) उसको भी खोकर चले गये। ऐसी स्थितिमें जब यमराजके पास जायँगे और उससे कहेंगे कि हमको मनुष्यका शरीर दो तो क्या फिर मनुष्य-शरीर मिलेगा? नहीं मिलेगा अर्थात् धूल पल्ले पड़ेगी। इन सब बातोंको सोचकर अपना काम शीघ्र-से-शीघ्र बना लेना चाहिये—

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखो आय॥

अतः हर समय भगवान्‌को याद रखना चाहिये, इसमें कमी नहीं रखनी चाहिये। विचार करनेसे मालूम होता है कि इस समय नित्य-निरन्तर भगवान्‌को याद रखनेसे भगवान्‌की प्राप्ति बहुत ही सहजमें—सुगमतासे शीघ्र ही हो सकती है; क्योंकि भगवान्‌ने कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

'जो अनन्यचित्त हुआ नित्य-निरन्तर मेरा स्मरण करता है, उस योगी (भक्त)-के लिये मैं सहजहीमें प्राप्त हो जाता हूँ।' जब ऐसी बात भगवान् स्वयं कह रहे हैं तो फिर उनके वचनोंको सुनकर भी उनसे मिले बिना हम कैसे रह सकते हैं। भगवान्‌का न मिलना जो हम बरदाश्त कर रहे हैं, इसका मतलब है कि हमारी उनके वचनोंमें श्रद्धा नहीं है, अन्यथा भगवान्‌के दर्शन किये बिना कोई एक क्षण भी कैसे रह सकता है। इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर हम लोगोंको बहुत तेजीसे साधन करना चाहिये। किसी प्रकारके बहकावेमें आकर, दबावमें आकर, संसारी पदार्थोंके लोभमें आकर अपना समय बरबाद नहीं करना चाहिये; क्योंकि ये सब संसारी पदार्थ—रुपये और गहने आदि यहीं पड़े रहेंगे। इन तुच्छ, नश्वर वस्तुओंके लोभमें हम अपने असली कामको छोड़ दें तो यह कितनी भारी मूर्खताकी बात है! परमात्माका नित्य-निरन्तर भजन-ध्यान अवश्य ही करते रहना चाहिये। उसमें तो किसी प्रकारकी—एक क्षणकी भी बाधा आनी ही नहीं चाहिये। हमारे लिये यह उत्तम-से-उत्तम बात है। यदि कहा जाय कि इसके लिये साधन क्या है? तो भगवान्‌के नाम और रूपका प्रत्येक क्षण स्मरण करके यानी भगवान्‌के नामका जप करने और भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान करने तथा निष्काम-भावसे श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भजन करनेसे बढ़कर और क्या साधन है! यदि इन सब बातोंको सुनकर, समझकर इनमें हम दिलचस्पी नहीं लें, तत्पर नहीं हों तो यह हमारी बड़ी भारी गलती होगी। इन सार-सार बातोंको काममें लानेकी चेष्टा करनी चाहिये। ये ऐसी अमूल्य बातें हैं कि इनको अपने हृदयमें धारण कर ही लेना चाहिये। कोई कठिन नहीं है, यदि हम यह समझ लें कि यह धारण करनेयोग्य है तो अपने-आप धारण हो जानी चाहिये। इस मनुष्य-जीवनके अमूल्य समयका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। ऐसा अवसर अपने हाथसे नहीं जाने देना चाहिये।

किसी कविने कहा है—

पाय परमपद हाथ सों जात गयी सो गयी अब राख रहीको।

यह पाया हुआ परमपद तुम्हारे हाथसे जा रहा है, जो समय चला गया, वह तो चला गया; अब जो बाकी है, उसकी रक्षा करनी चाहिये।

परमात्माकी प्राप्ति बहुत शीघ्र हो सकती हैं। समय तो है ही। हम लोग जीवित हैं, शरीरमें प्राण हैं, फिर कौन बड़ी बात है। बस, यही करना है कि अबसे लेकर मरणतक भगवान्‌को नहीं भूलें। भगवान्‌के नाम-रूपको याद रखते रहें तो हमारा निश्चय ही कल्याण हो जायगा। इसमें कोई संशय नहीं है। यही सार बात है।

श्रीरामनवमी

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

भिन्न-भिन्न देशों एवं कालोंके वैचित्र्यसे भावों एवं कर्मोंका भी वैचित्र्य होता है। किन्हींमें हठात् वैराग्य, विवेक एवं शान्तिका; किन्हींमें बलात् काम, क्रोध, मद, मात्सर्यका प्राखर्य होता है। यही स्थिति कालोंकी भी है। शिशिर, वसन्तादि ऋतुओंमें धरणी, अनिल, जलसे संयोग होनेपर भी धानमें अंकुरादिकी उत्पत्ति नहीं होती है। वर्षा ऋतुमें वही बीज अंकुरित हो उठता है। आम्रों तथा नानाविध तरु-लताओंका मुकुलित एवं पुष्पित होना कालविशेषकी ही अपेक्षा रखता है। 'किं बहुना' प्रत्येक पदार्थकी उत्पत्ति, स्थिति, विनाशादिमें भी कालकी अवश्य ही हेतुता है।

आधिदैविक भावनाओंमें भी भिन्न-भिन्न तिथियोंमें भिन्न-भिन्न शक्तियोंका प्रादुर्भाव होता है। किन्हीं कालोंमें आसुरी-शक्तियोंका और किन्हीं कालोंमें दैवी-शक्तियोंका प्राकट्य होता है। एकादशी प्रभृति तिथियाँ वैष्णवी, शिवरात्रि शैवी, नवरात्रोंमें दुर्गा और रामनवमीको श्रीराम-शक्तियोंका प्राकट्य होता है। पाशविक काम, कर्म, ज्ञानोंसे प्राणियोंकी शक्तिका क्षय होता है। पवित्र तिथियों एवं तीर्थोंमें तप, त्याग, उपवास, स्नान आदिसे अशुद्धियोंका मार्जन एवं दिव्य शक्तियोंका संचय होता है।

पुराणोंमें ऐसी आख्यायिकाएँ मिलती हैं कि किन्हीं महानुभावोंको किन्हीं स्थानोंपर जानेके कारण ही असम्भावित दुर्भावनाओंके वश होना पड़ा। जैसे सत्पुरुषोंके सत्कर्मों एवं सद्विचारोंका तात्कालिक प्रभाव पड़ता है, वैसे ही कालान्तरमें भी प्रभाव पड़ता है अर्थात् जहाँ सात्त्विक पुरुषोंके समीप, देव-मन्दिर, तीर्थादि स्थलोंमें सत्संग, भगवत्कथा, जप, तप, ध्यान आदि होता रहता है, वहाँ जानेपर मनमें वैसे ही भाव उत्पन्न होने लगते हैं। इसी तरह दुराचार तथा दुर्विचारशील प्रमादी पुरुषोंके समीप मनमें कुत्सित भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। अच्छे और बुरे विचारों एवं कर्मोंके समाप्त हो जानेपर भी उनके संस्कार बने रहते हैं। यह बात आजकलके मनोवैज्ञानिकोंने भी स्वीकार कर ली है कि विचारोंका प्रभाव पर्याप्तरूपसे देश, काल तथा व्यक्तियोंपर पड़ता है। इन विचारों एवं संकल्पोंका आदान-प्रदान भी हुआ करता है। असत् पुरुषों, अशास्त्रों तथा असत् कर्मोंको भुला देनेसे असत् विचारोंका प्रभाव रुक जाता है और बार-बार स्मरण करनेसे वह प्रचलित हो उठता है। सद्विचारों, शास्त्रों, पुरुषों एवं कर्मोंको बार-बार स्मरण करना उनका स्वागत करना है। उनका भूलना ही उनका बहिष्कार है।

'योगसूत्र' में वीतराग शुकादिके ध्यानको भी चित्तनिरोधका साधन कहा गया है—**'वीतरागविषयं वा चित्तम्।'** वीतरागकी आकृतिसे साधकके मनमें उनके आन्तरभावों एवं रागादिदोषरहित भगवदाकाराकारित चित्तका स्फुरण होता है। संसारमें अनन्त कर्म एवं विचारोंके संस्कार फैले होते हैं। बुद्धिमानोंका कर्तव्य है कि सद्विचारोंके आगमनका द्वार खुला तथा असद्विचारोंका बन्द रखें। सत्पुरुषों, शास्त्रों एवं सत्कर्मोंका स्मरण या सेवन ही उनका द्वार खोलना और विपरीतोंका परिवर्जन, विस्मरण ही उनके संस्कारोंका द्वार बन्द रखना है। सात्त्विक भावोंके स्मरण या सेवनसे उनके संकल्पकी धारा चल पड़ती है

और विपरीतसे विपरीतोंकी। पाशविक कर्मोंके दर्शन या चिन्तनसे ही कामादि विकृतियोंको स्थान मिल जाता है। इस तरह जिन देशोंमें उच्चकोटिके सत्पुरुषोंका निवास, सद्‌विचारों एवं सत्कर्मोंका विस्तार हुआ, वहाँके परमाणु, जल, वायु—सब-के-सब उसी भावनासे भावित हो जाते हैं। यही स्थिति कालोंकी भी होती है। स्वरसाधनावालोंको तत्त्वोंके भेदसे कालमें स्पष्ट भेद भासित होते हैं। किसी तत्त्वके संचारसे बलात् मनके चांचल्यकी सृष्टि होती है और किसी तत्त्वके संचारसे शान्ति, एकाग्रता आदिकी प्राप्ति होती है। इसीलिये भजन, ध्यान आदिके लिये आकाश या जल तत्त्व तथा सुषुम्णाका संचार अनुकूल समझा जाता है। अतएव भिन्न-भिन्न मासों और तिथियोंका माहात्म्य पुराणादि शास्त्रोंमें मिलता है।

श्रुतार्थापत्ति प्रमाणद्वारा यह स्पष्ट होता है कि शिवरात्रि, रामनवमी, जन्माष्टमी आदि दिव्य तिथियोंमें विशेषरूपसे शिव, विष्णु आदि शक्तियोंका प्राकट्य होता है। भजन, ध्यान, उपवासादिद्वारा उन शक्तियोंका ही संचय किया जाता है। अन्नपान आदिसे जबतक पुरुषकी शक्ति क्षीण रहती है, तबतक बाह्य शक्तियोंका आकर्षण नहीं होता। व्रतों, त्यौहारोंका यह भी एक रहस्य है।

चैत्र शुक्लपक्ष बड़े महत्त्वका है। इसमें नौ दिनोंतक आद्या शक्ति भगवतीका व्रत और सप्तशतीका पाठ करनेसे आध्यात्मिक, आधिभौतिक दोषोंपर विजय प्राप्त करनेमें बड़ी सहायता मिलती है। निखिल ब्रह्माण्डाधीश्वरी माताका पूजन होते ही विश्वपति भगवान् रामकी जन्मोत्सव-नवमी आ जाती है। रामनवमीको श्रीरामचन्द्रका दिव्य भर्ग (तेज) भूमण्डलमें सदा ही अवतीर्ण होकर विघ्नों तथा दानवी शक्तियोंका मर्दन करके सत्पुरुषोंका संरक्षण करता है। रामनवमीका व्रत, रामजन्मोत्सव और भगवान्‌का पूजन प्राणियोंको सचमुच दिव्य शक्ति प्रदान करता है।

संघर्षके द्वारा व्यापक अग्निका जैसे सगुण, साकार-रूपमें प्राकट्य होता है या शैत्यके सम्बन्धसे जलका बर्फ बन जाता है, वैसे ही प्रेमियोंके प्रेम-प्राखर्यसे विशुद्ध सत्त्वमयी श्रीकौशल्याम्बासे पूर्णतम, पुरुषोत्तम भगवान्‌का प्राकट्य होता है। यज्ञपुरुषद्वारा समर्पित चरुके विभागानुसार ही भगवान्‌का श्रीराम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्नरूपसे आविर्भाव होता है अथवा सांगोपांग शेषशायी भगवान्‌का चार रूपमें—साक्षात् भगवान्‌का श्रीरामरूपमें; शेष, शंख तथा चक्रका क्रमशः लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्नरूपमें प्राकट्य होता है। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है कि सप्रपंच ब्रह्मका तीन रूपमें और निष्प्रपंच ब्रह्मका श्रीरामरूपमें प्राकट्य हुआ। प्रणवकी 'अ', 'उ', 'म्' इन तीन मात्राओंके वाच्य विराट्, हिरण्यगर्भ तथा अव्याकृतका शत्रुघ्न, लक्ष्मण और भरतरूपमें एवं अर्धमात्राके अर्थ तुरीय पाद या वाच्य-वाचकातीत, सर्वाधिष्ठान, परमतत्त्वका श्रीरामरूपमें प्रादुर्भाव हुआ। निष्प्रपंच अर्धमात्राका अर्थ तुरीयतत्त्व ही चरुके अर्ध अंशसे व्यक्त हुए हैं। प्रणवकी जैसे साढ़े तीन मात्रा मानी गयी है, वैसे सोलह मात्रा भी मानी गयी है। समस्त वाक्योंका अन्तर्भाव अकारमें ही होता है और समस्त वाक्योंका आविर्भाव प्रणवसे ही होता है, अतः प्रणवमें सोलह मात्राकी कल्पना करके उसके सोलह वाच्य स्थिर किये गये हैं। जाग्रत्-अवस्थाका अभिमानी व्यष्टि विश्व और समष्टि स्थूल प्रपंचका अभिमानी विराट् होता है। सूक्ष्म प्रपंच तथा स्वप्नावस्थाका अभिमानी तैजस एवं हिरण्यगर्भ और कारण प्रपंच एवं सुषुप्ति-अवस्थाका अभिमानी प्राज्ञ और अव्याकृत होता है। इन सभी कल्पनाओंका अधिष्ठान शुद्ध ब्रह्म तुरीय तत्त्व होता है। फिर इन एक-एकमें 'जाग्रत् जाग्रत्' आदि चार-चार भेद बतलाये गये हैं। इस पक्षमें 'तुरीय विराट्' शत्रुघ्न, 'तुरीय हिरण्यगर्भ' लक्ष्मण, 'तुरीय अव्याकृत' भरत और 'तुरीय तुरीय' श्रीमद्राघवेन्द्र रामचन्द्ररूपमें प्रकट होते हैं और उनकी माधुर्याधिष्ठात्री महाशक्ति जनकनन्दिनीरूपसे प्रकट होती हैं। सर्वथा पूर्णतम, पुरुषोत्तम, वेदान्तवेद्य भगवान्‌का ही श्रीरामचन्द्ररूपमें प्राकट्य होता है, तभी तो उनके दर्शन, स्पर्शन, श्रवण एवं अनुगमनमात्रसे प्राणियोंकी परमगति हो जाती है—

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोशलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥

भजन कैसे करें ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भजन कैसे किया जाय—इसका कोई एक उत्तर नहीं होता है। क्यों नहीं होता है ? इसलिये कि अपने रामको हम चाहे जैसे भजें, वह भजन है। भजनका अर्थ होता है—सेवा। जिस प्रकारसे हम भगवान्‌की सेवा करें, उसका नाम है—भजन। भगवान्‌का नाम-जप करते हैं वह भजन, भगवान्‌का ध्यान करते हैं वह भजन, भगवान्‌के नाते हम जगत्‌के प्राणियोंकी सेवा करते हैं वह भजन, भगवान्‌की मूर्तिकी पूजा करते हैं वह भजन, भगवान्‌की आज्ञा मानते हैं वह भजन, भगवान्‌के शास्त्र-वाक्योंके अनुसार जीवन व्यतीत करते हैं, वह भजन। यह सब भजन है। परंतु एक बात समझ लें तो सब कार्य भजन हो जाय। वह बात है कि हमारे पास तीन चीजें हैं—शरीर, मन और वाणी—इन तीनोंका उपयोग हम भगवान्‌के भजनमें, उनकी सेवामें करें।

शरीरके द्वारा विलासिता, शौकीनी, आरामतलबी, ब्रह्मचर्यका नाश और उद्दण्डता इत्यादि दोषोंको छोड़ करके शरीरको लगा दें भगवान्‌की सेवामें। भगवान्‌की सेवाका अर्थ मूर्तिपूजा—उनके श्रीविग्रहकी पूजा भी है और वह अवश्य करनी चाहिये, नित्य-नित्य करनी चाहिये। परंतु एक ऐसी पूजा है, जिससे हम जीवनपर्यन्त भगवान्‌की पूजा कर सकते हैं। अपने शरीरसे हम जो भी कार्य करें, उसमें यह भाव रखें कि हम भगवान्‌की सेवा कर रहे हैं। शरीरका समस्त उपयोग भगवान्‌की सेवामें करें। भगवान्‌ने कहा है—**'यत्करोषि'** तुम जो भी करो, वह सब मेरेको अर्पण करो—**'तत्कुरुष्व मदर्पणम्'** (गीता ९। २७)। सोयें हम और अर्पण भगवान्‌को हो। भोजन हम करें और अर्पण भगवान्‌को हो। अब इस बातको समझना है कि यह हो कैसे ?

कोई व्यक्ति अमुक पदार्थ इसलिये खाता है कि उसमें स्वाद है। किसीको मिठाई अच्छी लगती है, किसीको नमकीन और किसीको जीभके स्वादके लिये खट्टी चीज अच्छी लगती है। एक व्यक्ति भोजन इसलिये करता है कि अमुक-अमुक पदार्थ, जो शरीरके लिये आवश्यक हैं, उपयोगी हैं, उन्हें खाये तो स्वास्थ्य ठीक रहेगा। एक आदमी इसलिये भोजन करता है कि अमुक-अमुक चीजोंको खानेसे मदमत्त हो जायँगे और अधिक भोग करेंगे। एक आदमी भोजन इसलिये करता है कि शरीरमें शक्ति आयेगी, तब जनताकी सेवा, माता-पिताकी सेवा और देशकी सेवा भलीभाँति कर सकेंगे। एक आदमी भूख मिटानेके लिये किसी प्रकार पेट भर लेता है और एक आदमी इसलिये भोजन करता है कि शरीर मिला है भगवत्प्राप्तिके लिये, परंतु भगवत्प्राप्ति होती है भजनसे और भजनके लिये शरीरकी रक्षा आवश्यक है। शरीरकी रक्षाके लिये भोजन आवश्यक है। इसलिये वह वैसा ही भोजन करता है, जिससे सात्त्विक विचार उत्पन्न हों। भजनमें मन लगे, विकार न हो और भजनमय जीवन बन जाय। इस रूपमें छः प्रकारसे भोजन करनेवाले भोजन करते हैं। परंतु भोजन करनेवालोंका भाव भिन्न-भिन्न है, इसलिये उनका फल भिन्न-भिन्न होता है। एकका भोजन भगवत्प्राप्ति करानेवाला और दूसरेका भोजन नरकोंमें ले जानेवाला है। शक्तिसम्पन्न होकर दूसरोंको मारनेके लिये, भोग भोगनेके लिये, सेवाके लिये, शक्तिके लिये, स्वादके लिये और भगवान्‌के लिये भोजन होता है, जो इससे भी ऊँचा बढ़ जाता है, उससे यदि कोई पूछे कि तुम खाते क्यों हो ? तब उनका उत्तर होता है कि मुझे खाते देखकर मेरे श्रीकृष्ण हँसते हैं, उनको सुख मिलता है, इसलिये खाते हैं। यह गोपियोंका खाना है। गोपियोंका खाना क्या था ? अपने सुखके लिये नहीं, भजनके लिये भी नहीं, अपितु श्रीकृष्णके सुखके लिये। यह सर्वोत्तम भोजन है।

इसी प्रकार एक व्यक्ति कपड़ा इसलिये पहनता है कि मेरे कपड़ोंको देखकर लोग मेरी तरफ आकर्षित हों। लोगोंको दिखानेके लिये सजता है। दूसरा, उसे स्वाभाविक सजना प्रिय होता है। वह दिखाता नहीं है।

एक आदमी इसलिये कपड़ा पहनता है कि समाजमें लज्जाकी रक्षा करनी चाहिये। समाजोपयोगी वस्त्र पहनने चाहिये और शरीरकी रक्षा करनी चाहिये शीत और धूपसे। एक व्यक्ति कपड़े इसलिये पहनता है कि शरीरकी रक्षा होगी, तब भजन होगा और एक व्यक्ति कपड़े पहनता है भगवत्प्रेमके लिये। कपड़े सभी पहनते हैं, परंतु अपने-अपने भावानुसार अन्तर होता है।

इसी तरह प्रत्येक कार्य—खानेमें, सोनेमें, उठनेमें, बैठनेमें, व्यापार करनेमें, नौकरी करनेमें, वकालतमें, डॉक्टरीमें, सेवामें अथवा अन्य किसी भी कार्यमें अगर भगवत्सेवाका भाव है तो उसका प्रत्येक कार्य भगवत्सेवा बन जाता है। लेना-देना, उठाना, रखना, शरीरका चलना-फिरना, शरीरके सारे कार्य भगवत्सेवा बन जाते हैं।

अब रही वाणीकी बात। वाणीसे—जबानसे पाँच पाप होते हैं—(१) व्यंग्यात्मक वाणी—जो सुननेवालेको जाकर चुभ जाय, (२) असत्य बोलना, (३) अप्रिय बोलना, (४) अहितकर बोलना और (५) व्यर्थ बोलना।

पाण्डवोंका राजसूय यज्ञ हुआ। उस जमानेमें मय दानव थे, जो एक बड़े वैज्ञानिक थे। उन्होंने इस प्रकारका मण्डप बनाया कि जहाँ जल था, वहाँ जमीन दीखती और जहाँ जमीन थी, वहाँ जल लहराता हुआ दीखता। यह बात सबको ज्ञात नहीं थी। वहाँ दुर्योधन आये तो देखा कि जल लहरा रहा है, परंतु वहाँ थी

जमीन, उन्होंने अपने कपड़े ऊपर उठा लिये कि कहीं भीग न जाय। कुछ लोग मुसकुरा दिये। कुछ और आगे बढ़े तो वहाँ जल था, परंतु समतल जमीन प्रतीत हो रही थी। वहाँ वे सीधे आगे बढ़े तो उनके सारे कपड़े भीग गये। यह देखकर भीमसेन और द्रौपदी दोनों हँस पड़े। भीमसेनने कह दिया कि आखिर है तो अन्धेका ही पुत्र न! उनकी यह बात दुर्योधनको तीरकी तरह चुभ गयी। धर्मराज बोले—क्या कहते हो? परंतु जबानसे तो बात निकल ही गयी। आजकल लोग अपनी बातको वापस लेते हैं। गाली दे दी और कहते हैं हम अपनी बात Withdraw करते हैं—वापस लेते हैं। वाणी वापस लेनेकी चीज नहीं है। उनकी वह बात दुर्योधनको चुभ गयी। उसने ठान लिया कि या तो पाण्डव रहेंगे या हम रहेंगे। वैर बद्धमूल हो गया। इसलिये ऐसी वाणी न बोले जो दूसरेको चुभ जाय।

जो भी बोले सत्य बोले। वैसे शब्द कह देना इसका नाम सत्य नहीं है। सत्य भावसे होता है। जैसे कोई मित्र हमारे यहाँ आये और कोई आकर बोले कि आपके मित्र आये हैं, उनसे मिलना है। परंतु भूलसे अथवा अन्य किसी परिस्थितिवश मुलाकात नहीं हो पायी और रास्तेमें जाते हुए भेंट हो जाय। तब यदि कहें कि मुझे मालूम था आप आये हैं, परंतु मिल नहीं पाये तो झेंप होती है और यह कह दें कि आप कब आये तो झूठ होता है। इसलिये छलकी भाषा बनाते हैं—'आप आज आये' तीन शब्द बोले, परंतु उच्चारण इस प्रकार किया कि प्रश्नवाचक हो गया। हमें मालूम था कि यह आज आये हैं और कह भी दिया कि 'आप आज आये'। शाब्दिक रूपसे झूठ तो नहीं हुआ, परंतु हमने उनको समझाया क्या? हमने अपने बोलनेके ढंगसे यह बताया कि हमें मालूम नहीं कि आप आज आये हैं। इसलिये यह झूठ हो गया। परंतु हम इन शब्दोंको न बोल सकें और उन्हें इशारेसे समझा दें कि आप आज आये, हमें मालूम था तो यह सत्य हो गया। भले ही, शब्द न बोलें। [क्रमशः]

प्रेरक-कथा—

दुर्व्यसनोंसे मुक्ति

[शंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजके जीवनकी घटना]

(भक्त श्रीरामशरणदासजी)

सन् १९३० ई० के आसपासकी बात है। प्राचीन तीर्थ गढ़मुक्तेश्वर (गाजियाबाद)-के गंगातटपर स्थित एक गाँवमें एक विरक्त दण्डी संन्यासी आये। गाँवके बाहर स्थित शिवमन्दिरमें उन्होंने साधना शुरू कर दी।

गाँववाले रातके समय चौपालपर इकट्ठा हुए तो एकने बताया कि एक-दो दिनसे कोई महात्मा मन्दिरमें ठहरे हुए हैं। लगता है, किसीने उन्हें भोजन नहीं पहुँचाया। दस-बारह ग्रामीण उठे और मन्दिरकी ओर चल दिये।

मन्दिर पहुँचकर उन्होंने दण्डी संन्यासीका चरण-स्पर्श करके प्रणाम किया और बैठ गये। एक वृद्ध ब्राह्मणने कहा—बाबा! आप गाँवमें कब पधारे?

'हम कल यहाँ पहुँचे थे'—स्वामीजीने बतलाया।

'मालूम हुआ कि आपने कलसे भोजन नहीं किया है'—वृद्ध ब्राह्मणने जिज्ञासावश पूछा।

'कल और आज हमारा एकादशीव्रत था। इसलिये भोजन तो क्या हमने जल भी ग्रहण नहीं किया'—संतने जवाब दिया।

'महाराज! कल हमारे यहाँ आप भोजन ग्रहण करनेकी कृपा करें'—वृद्ध ब्राह्मणने प्रार्थना की।

'भोजन हम कुछ शर्तोंके साथ करते हैं'—स्वामीजीने कहा।

'क्या शर्त है, बताइये'—वृद्धने पूछा।

'क्या आपके घर शराब या तम्बाकू तो नहीं पी जाती?'—संन्यासीने पूछा।

'महाराज! हुक्का तो हम पीते हैं, किंतु शराब हमारे घर नहीं पी जाती'—उन्होंने उत्तर दिया।

'तब तो मैं लाचार हूँ।' संन्यासीने कहा।

दूसरा ग्रामीण सामने आया, बोला—'महाराज! मैं ब्राह्मण हूँ, मेरे घर न हुक्का पीया जाता है, न शराब। कृपाकर मेरे घर तो भोजन कर लेंगे।'

'क्या तुम सन्ध्या करते हो तथा यज्ञोपवीत पहनते हो?'—स्वामीजीने पूछा।

'नहीं महाराज! यज्ञोपवीत तो नहीं है' उत्तर मिला।

'तो हम तुम्हारे यहाँ भी भोजन नहीं कर सकते।'

इस प्रकार कोई भी ग्रामीण संन्यासीकी शर्त पूरी नहीं कर पाया।

अगले दिन गाँवमें पंचायत हुई। वृद्धने गाँववालोंसे कहा—'भाई! गाँवमें एक तेजस्वी संन्यासी आये हुए हैं और बड़े दुःखका विषय है कि गाँवमें एक भी घर ऐसा नहीं निकला, जहाँ शराब-तम्बाकूका सेवन न होता हो तथा पूर्णरूपसे धर्मशास्त्रोंके अनुसार जीवन-निर्वाह हो, जहाँ कि स्वामीजी भोजन कर सकें। सभी मिलकर हुक्के उठाकर बाहर फेंक दो। यज्ञोपवीत धारण करके सन्ध्या-वन्दन करनेका नियम बनाओ। कम-से-कम अपने परिवारको इतना पवित्र बना लो कि कोई सच्चा साधु-संन्यासी गाँवमें आये तो वह भूखा तो न रहे, हमारे घर भोजन तो कर सके।'

देखते-ही-देखते हुक्के और शराबकी बोतलें घरोंसे बाहर फेंक दी गयीं। सभी मिलकर मन्दिर गये—स्वामीजीके सामने संकल्प लिया कि भविष्यमें इस गाँवमें शराब-तम्बाकू पीनेवाला नहीं मिलेगा। आज आप हमें यज्ञोपवीत धारण करायें। हम संकल्प लेते हैं—'नित्य सन्ध्या करेंगे, गायत्रीमन्त्रका जप करेंगे। धर्मशास्त्रानुसार जीवन जीयेंगे।'

ये तेजस्वी संन्यासी थे—स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज, जो आगे चलकर ज्योतिर्मठके शंकराचार्य बने। उन्होंने मेरठमण्डलके गाँव-गाँवमें पहुँचकर हजारों ग्रामीणोंको मांस-मदिरा और तम्बाकू आदिके दुर्व्यसनोंसे मुक्त कराया तथा धर्मशास्त्रानुसार सादा जीवन जीनेकी प्रेरणा दी।

साधकोंके प्रति—

[दृढ़ विचारसे लाभ]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

श्रोता—जबतक हमारे सामने सांसारिक भोग नहीं आते, तबतक तो हमारा दृढ़ भाव रहता है कि हम भोगोंमें फँसेंगे नहीं, परंतु भोग सामने आनेपर हम कमजोर हो जाते हैं! हम क्या करें?

स्वामीजी—बहुत सुन्दर प्रश्न है! भोगोंमें न फँसनेका जो यह भाव है, यह बहुत ही दुर्लभ चीज है, बड़ी भारी कीमती चीज है। संसारका सम्बन्ध तोड़ना और भगवान्‌का सम्बन्ध जाग्रत् करना—यह खास मनुष्यता है। वास्तवमें देखा जाय तो संसारके साथ हमारा सम्बन्ध जुड़ता नहीं और भगवान्‌के साथ हमारा सम्बन्ध टूटता नहीं। हम संसारके साथ एक हो जायँ और भगवान्‌से अलग हो जायँ—यह बिलकुल असम्भव बात है। हमारेमें यह शक्ति नहीं है कि हम भगवान्‌से अलग हो जायँ और सर्वसमर्थ होते हुए भी भगवान्‌में यह शक्ति नहीं है कि वे हमारेसे अलग हो जायँ। वास्तविक बात यह है कि हमारा संसारके साथ सम्बन्ध नहीं है और भगवान्‌के साथ सम्बन्ध है। जो नहीं है, उसको तोड़ दें और जो है, उसे जाग्रत् कर दें—यह हमारा खास काम है।

जबतक सामने पदार्थ नहीं आते, तबतक यह दृढ़ भाव रहता है कि हम भोगोंमें फँसेंगे नहीं—इतनी बात भी अगर आपकी हो गयी है तो यह बड़े भारी आनन्दकी बात है। भोगोंकी इच्छा न होना बहुत ऊँचे दर्जेकी बात है, मामूली बात नहीं है। संसारको छोड़नेकी और भगवान्‌को प्राप्त करनेकी थोड़ी भी इच्छा हुई है तो इसका फल नाशवान् नहीं होगा, प्रत्युत अविनाशी फल (कल्याण) ही होगा—'**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।**' (गीता २। ४०) लाखों, करोड़ों, अरबों रुपये मिल जायँ तो वे भी इसके सामने कुछ नहीं हैं। त्रिलोकीका राज्य मिल जाय तो उसकी केश-जितनी भी इज्जत नहीं है; क्योंकि यह सब नाशवान् है।

सामने पदार्थ आनेपर हम विचलित हो जाते हैं—यह दशा हमारी क्यों है कि विचार कर-करके छोड़ देते हैं, ऐसी आदत खराब पड़ी हुई है। सत्संगमें सुनकर, पुस्तकोंमें पढ़कर विचार करते हैं कि अब ऐसा करेंगे, पर फिर उसको छोड़ देते हैं। मामूली बातोंको भी पकड़कर फिर छोड़ देते हैं। यह आदत ही आपको कमजोर करती है। अगर आपकी ऐसी आदत होती कि किसी बातको छोड़ दिया तो छोड़ ही दिया, पकड़ लिया तो पकड़ ही लिया, तो आपकी यह दुर्दशा नहीं होती। क्षमा करना, बुरा न लगे आपको; परंतु है यह दुर्दशा ही! हरेक कामका विचार करते हैं तो उस विचारपर स्थायी नहीं रहते। पदार्थोंमें, संग्रहमें इतना अवगुण नहीं है, जितना अवगुण हमारी खराब आदतमें है। जबतक आपमें दृढ़ता नहीं है, तबतक आप किसी भी क्षेत्रमें जाओ, आप उन्नति नहीं कर सकते। आदत बिगड़नेसे बड़ा भारी नुकसान हो रहा है। अगर एक बातपर दृढ़ रहनेकी आदत बना लो तो निहाल हो जाओगे। भगवान् मेरे हैं तो चाहे कुछ भी हो जाय, भगवान् ही मेरे हैं। संसार मेरा नहीं है तो मेरा है ही नहीं।

सत्य बोलना है तो पक्का विचार कर लो कि आजसे सत्य ही बोलना है, झूठ बोलना ही नहीं है। इसमें भी 'हम झूठ नहीं बोलेंगे'—इस बातपर अटल रहो, 'हम सत्य बोलेंगे'—इस बातपर नहीं। त्यागकी बहुत बड़ी महिमा है। चाहे कुछ भी हो जाय, हम झूठ नहीं बोलेंगे। चाहे प्रतिष्ठा जाती हो, इज्जत जाती हो, पैसा जाता हो, हमारी कुछ भी हानि होती हो, पर हम झूठ नहीं बोलेंगे। सत्य बोलनेका अवसर आनेपर अगर आप कमजोर पड़ जाओ, सत्य बोलनेकी हिम्मत न रहे तो इतनी ढिलाई भले ही रख लो कि झूठ मत बोलो, चुप रह जाओ। सामनेवालेसे कह दो कि सभी बातें सबको बतानेकी नहीं होतीं, इसलिये हम नहीं बतायेंगे। हमारेमें सच्ची बात बतानेकी सामर्थ्य नहीं है; सच्ची बात कहनेका अभी विचार नहीं है; पूरी बात बतानेका हमारा

मन नहीं है। वहाँसे उठकर चल दो कि 'हमें काम है।' काम यही है कि बताना नहीं है। ऐसा करनेसे 'हम झूठ नहीं बोलेंगे'—यह आपकी प्रतिज्ञा सत्य हो जायगी। यह आपको ऐसा उपाय बताया है, जिसको आप कर सकते हो।

आपने एक बार जो पक्का विचार कर लिया है, उस विचारकी फिर कभी हत्या मत करो। अपने विचारोंकी हत्या बार-बार जन्म-मरण देनेवाली है। अतः अपना विचार पक्का रखो कि पदार्थ भले ही सामने आ जायँ, अब हम विचलित नहीं होंगे, अब हम थूककर नहीं चाटेंगे। अपने विचारपर दृढ़ रहनेसे आपमें एक शक्ति आयेगी, एक बल आयेगा। फिर आपकी यह दशा नहीं रहेगी। लोग भले ही आपको कायर कहें, आपकी निन्दा करें, उसकी परवाह मत करो। हमें तो अपने विचारोंको पक्का करना है।

आप जैसे हो, वैसा आपको सुगम साधन तो मैं बता दूँगा, पर धारण तो आपको ही करना पड़ेगा। आपको बहुत सुगम, बहुत सरल साधन मैं बता दूँगा और आपसे यह बात स्वीकार भी करा लूँगा, इस साधनको हम कर सकते हैं और इससे हमारा भला हो सकता है। आप केवल तैयार हो जाओ, इतनेमें काम बन जायगा। कारण कि मूलमें परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्यशरीर मिला है। अब परमात्मा नहीं मिलेंगे तो और क्या मिलेगा? संसार तो मिल ही नहीं सकता। वहम होता है कि रुपये मिल गये, कुटुम्ब मिल गया। सब खत्म हो जायगा, मिला कहाँ? संसार मिल नहीं सकता और भगवान्‌से अलग हो नहीं सकते, बिलकुल सच्ची बात है यह।

हम किसीका भी अहित नहीं करेंगे, किसीको भी दुःख नहीं देंगे—इसपर आप दृढ़ रहो। यह बात मामूली दीखती है, पर वास्तवमें इसका बहुत बड़ा माहात्म्य है। भजन, ध्यान, जप आदिसे इसका कम माहात्म्य नहीं है। यह बहुत कीमती बात है, पर लोग इसकी तरफ ध्यान नहीं देते, इसको ऐसे ही छोड़ देते हैं। जैसे रोग मिटनेपर भूख लगने लगती है और भोजन करनेपर शरीरमें ताकत आनी शुरू हो जाती है। पाचन ठीक होता है तो रूखा अन्न खानेपर भी शक्ति आने लगती है। इसी तरह आप अपने विचारपर दृढ़ रहो तो आपमें एक शक्ति आ जायगी। अतः अपने विचारपर पक्के रहो कि हम असत्य बोलेंगे ही नहीं, चाहे कुछ भी हो जाय। हम चतुराई नहीं करेंगे। इस बातसे आप मत डरो कि हमारी बेइज्जती हो जायगी। झूठ बोलकर छिपाव करोगे तो इससे बहुत बड़ी बेइज्जती होगी, कम नहीं होगी। बिना छिपावके आपकी बहुत इज्जत होगी। चालाकी करोगे तो अच्छे पुरुषोंके हृदयसे गिर जाओगे कि यह कोई कामका आदमी नहीं है। ठाकुरजीके हृदयसे गिर जाओगे। अतः चतुराई मत करो, सीधी-साफ बात कह दो। साफ बात कहनेसे कोई फाँसी थोड़े ही देता है? ऐसा करना कोई कठिन बात नहीं है। अपने कल्याणका विचार होनेसे यह बात बहुत सुगम हो जायगी। पहले थोड़ा-सा भय लगता है, फिर भय मिट जाता है।

अतः मेरेसे कोई बात पूछें तो मैं बता दूँगा, नहीं तो हजारों आदमियोंके सामने कह दूँगा कि मैं जानता नहीं। सीधी बात कहनेमें हमारेको क्या बाधा लगी? लोग हमारेको अज्ञ, मूर्ख मानेंगे, बेसमझ मानेंगे और क्या होगा? समझदार मानकर कौन-सी भगवत्प्राप्ति करा देंगे और बेसमझ मानकर कौन-सी भगवत्प्राप्तिमें आड़ लगा देंगे? जो हम जानते हैं, वह बतायेंगे; जो नहीं जानते हैं, वह नहीं बतायेंगे और कई बातें ऐसी हैं, जो हम जानते हैं, पर नहीं बतायेंगे। मेरा ऐसा कहनेका काम पड़ा है कि तुम यह पूछते हो, पर इस बातको बतानेसे तुम्हें फायदा नहीं है, इसलिये नहीं बताऊँगा।

इस बातसे डरो मत कि हमारी पोल निकल जायगी। पोल निकल जायगी तो ठोस रह जायगी। पोल रखकर क्या करोगे? आश्चर्य होता है कि वेदव्यासजी महाराजने अपने जन्मकी बात श्लोकबद्धरूपसे कई बार लिख दी। क्या हृदय है उनका! इसके कारण वे पूजनीय हैं, आदरणीय हैं। सच्ची बात प्रकट करनेसे नुकसान नहीं होता। केवल वहम है कि नुकसान हो जायगा।

चिन्तन—

जीवनकी सार्थकता और आधुनिक मूल्य

(आचार्य श्रीतुलसीजी)

जीवन एक प्रवाह है। वह रुकता नहीं है, बहता रहता है। जो बहता है, वही प्रवाह होता है। जिसमें ठहराव है, गतिहीनता है, वह प्रवाह नहीं हो सकता। प्रवाह स्वच्छताका प्रतीक है, जबकि ठहरावमें गन्दगीकी सम्भावना बनी रहती है। प्रवाहमें जीवनी-शक्ति है, जबकि ठहरावमें अस्तित्वका लोप सम्भव है। ऐसी स्थितिमें प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवनको आगे ले जाना चाहेगा। सवाल एक ही है कि जीवन कैसा हो ? भारतीय आस्थाके अनुसार जीवनका स्वरूप यह है—

शान्तं तुष्टं पवित्रं च सानन्दमिति तत्त्वतः।
जीवनं जीवनं प्राहुर्भारतीयसुसंस्कृतौ॥

भारतीय संस्कृतिमें उस जीवनको प्रशस्त जीवन माना गया है, जो शान्त हो, सन्तुष्ट हो, पवित्र हो और सानन्द हो। शान्ति, सन्तुष्टि, पवित्रता और आनन्द जीवनकी महान् उपलब्धियाँ हैं। इनका सम्बन्ध बाह्य पदार्थोंसे नहीं, व्यक्तिकी अपनी वृत्तियोंसे है। पदार्थोंका ढेर लग जाय तो भी वहाँ शान्तिका जन्म नहीं हो सकता। सन्तोषकी प्राप्ति भी पदार्थसे नहीं हो सकती। संसारकी सम्पूर्ण सुख-सुविधाएँ कदमोंमें आकर बिछ जायँ, फिर भी तोषका अनुभव नहीं होता। लाभ लोभको बढ़ाता है, यह तीर्थंकरोंकी वाणी है। तीर्थंकरोंकी वाणी अनुभूत सत्यसे पूरित होती है। उसमें किसी प्रकारके सन्देहका अवकाश नहीं रहता।

तीसरा तत्त्व है पवित्रता। उसका पदार्थके साथ कोई रिश्ता ही नहीं है। पदार्थके साथ जितना गहरा अनुबन्ध होता है, पवित्रतापर उतना ही सघन आवरण आ जाता है। पवित्रता नहीं है तो आनन्द कहाँसे आयेगा ? आनन्दका निवास तो चित्तकी पवित्रतामें ही होता है। ऐसी स्थितिमें सार्थक जीवन जीनेकी आकांक्षा अधिक दूभर हो जाती है।

उपर्युक्त विवेचनका अर्थ यह नहीं है कि पदार्थवादी युगमें कोई व्यक्ति सार्थक जीवन जी ही नहीं सकता। मेरे अभिमतसे असम्भव कुछ नहीं है। फिर भी मंजिलके अनुरूप रास्तेकी खोज बहुत आवश्यक है। सार्थक जीवन जीनेके भी कुछ उपाय हैं। उसी आस्थाके परिप्रेक्ष्यमें वे उपाय हैं—

संयमाज्जायते शान्तिस्तोषहेतुः स्वतन्त्रता।
हेतुशुद्ध्या पवित्रत्वं स्वस्थ आनन्दमर्हति॥

शान्तिका उत्स संयम है। जो लोग संयमसे जीते हैं, वे विशिष्ट शान्तिका अनुभव करते हैं। स्वतन्त्रतासे सन्तोषकी प्राप्ति होती है। सोनेके पिंजरेमें कैद पंछीको कितने ही मेवे-मिष्टान्न मिल जायँ, वह कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता। परतन्त्रता चाहे बाहरकी हो या भीतरकी, वहाँ आत्मतोष नहीं मिल सकता। जीवनमें पवित्रता तबतक नहीं उतर सकती, जबतक साधन-शुद्धि न हो। धतूरेके बीजसे आमका वृक्ष नहीं उग सकता। इसी प्रकार अशुद्ध साधनसे शुद्ध साध्यकी प्राप्ति नहीं हो सकती। आनन्दका अनुभव उस व्यक्तिको होता है, जो स्वस्थ रहता है। स्वस्थ कौन ? **'स्वस्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थः'** जो अपने-आपमें स्थित रहता है, पूरी तरहसे आत्मस्थ है, जिसकी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हैं, जो बाहर नहीं भटकता, वह स्वस्थ होता है।

इसी प्रकारका जीवन भारतीय संस्कृतिका जीवन है। ऐसा जीवन कोई भी जी सकता है, बशर्ते कि वह इतना उदात्त जीवन जीना चाहे। जिसका जीवन प्रारम्भसे ही कुण्ठा और निराशाका शिकार हो, वह प्राप्त अवसरका भी लाभ नहीं उठा सकता। जिस व्यक्तिका चिन्तन प्रवाहका पक्षपाती होता है, जो यह सोचता है कि सब लोग असंयमकी दिशामें बह रहे हैं, मैं अकेला ही संयमके रास्तेपर क्यों चलूँ ? वह कोई ऊँचा काम नहीं कर सकता।

जो व्यक्ति अपने जीवनमें कभी निराश नहीं होता, कठिन-से-कठिन परिस्थितिको भी जो हँसता-हँसता पार कर लेता है, जिसकी गतिमें कभी अवरोध नहीं आता, जो अपने पुरुषार्थपर भरोसा रखता है, उसका प्रयोग करना जानता है और समयपर उचित प्रयोग करता भी है, वह जीवनको अर्थवान् बना लेता है। जीवनकी सार्थकता और व्यर्थता उसकी शैलीपर निर्भर है। जिस जीवन-शैलीमें संयम और सादगीका मूल्य है, अनुशासन और विनयका महत्त्व है, वह शैली सबके लिये हितावह हो सकती है।

पावन गंगा *

(श्रीएरिक न्यूबीजी)

*[श्रीएरिक न्यूबी प्रसिद्ध अँगरेजी साप्ताहिक सण्डे आब्जर्वरके पर्यटन सम्पादक थे। उन्होंने बीसवीं सदीके सत्तरके दशकमें गंगोत्रीसे गंगासागरतक १५०० मीलकी यात्रा की थी और उसका विवरण लिखा था, यहाँ उसे प्राय: उसी रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है—*सम्पादक *]*

करोड़ों हिन्दुओंके लिये गंगा माताके समान है। गंगामाताकी गोदमें भारतकी ३००० वर्षसे अधिक पुरानी सभ्यता पली और पनपी है। गंगा सघन जनसंख्यावाले तीन राज्यों—उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगालसे होकर बहती है। उद्‌गमसे सागरतक गंगा १५०० मील लम्बी है। नील नदी इससे दूनी लम्बी है और इसी प्रकार अमेजन, मिसीसिपी मिसूरी और चीनकी यांगत्से नदियाँ कहीं इससे ज्यादा लम्बी हैं, और तो और यूरोपकी डेन्यूब भी गंगासे ज्यादा लम्बी है। 'तब कैसे यह सबसे बड़ी नदी कहलाती है?' वास्तवमें 'बड़े होनेका अर्थ यह है कि भारतमें ४३ करोड़ हिन्दुओं और संसारमें बिखरे हुए अगणित अन्य लोगोंकी रायमें धरतीपर यह सबसे ज्यादा पावन और पूजित नदी है। इन सबकी दृष्टिमें यह गंगा माई है—मदर गंगा है।' प्रेमसे गंगाका नाममात्र लेनेसे तीन जन्मोंके पाप कट जाते हैं। उसके पावन जलमें स्नान करनेसे समस्त पापोंका प्रक्षालन हो जाता है। उसके तटपर शवदाह होनेसे और कहीं उसके तटपर प्राण निकले तो स्वर्गमें स्थान मिल जाता है। गंगाजल पीनेसे (और कुछ लोग तो केवल गंगाजल ही पीते हैं) शरीर और आत्मा दोनोंकी शुद्धि होती है। इसके जलमें अद्‌भुत गुण हैं, बोतलमें भरकर रखिये, वर्षोंतक खराब नहीं होगा। इसमें घुसे जीवाणु नष्ट हो जाते हैं और जल शुद्ध बना रहता है।

उद्‌गम—गंगाका उद्भव हिमालयके गढ़वाल प्रदेशमें १२००० फुटकी ऊँचाईपर भागीरथीके नामसे गोमुख नामक एक गुफासे होता है। यह स्थल गंगोत्री ग्लेशियर (हिमनदी)-के छोरपर स्थित है। हिन्दू और गैर हिन्दू समान रूपसे इस क्षेत्रकी रहस्यमय दिव्यताका अनुभव करते हैं।

× × ×

गंगाकी यात्रा पश्चिमसे पूर्वकी ओर जाती है। पहले यमुनाके उद्‌गम [बन्दरपूँछकी दो चोटियों (२०,७२० और २०,०२० फुट)-के पार्श्वसे]-की यात्रा करते हैं। अगरबत्ती, धूप, घी, चन्दन और अन्य पूजा-सामग्री लिये यमुनोत्री धामके अन्तिम २० मीलकी पदयात्रा करते हैं। कुछ लोग तो पूरी यात्रा ही पैदल करते हैं। कुछ लोग भक्तिके अतिरेकमें उद्‌गमसे सागरद्वीपतक पदयात्राका व्रत लेते हैं, ६ वर्ष लम्बी यात्रामें वे दण्डवत् लेटते हुए चलते हैं। कुछ लोग पैसे खर्चकर कुलियोंकी पीठपर (या खच्चरपर) बैठकर मार्ग तय करते हैं।

गंगोत्री—देवदारुके सघन वृक्षोंकी छायामें एक छोटा-सा मन्दिर है, जिसके शिखरपर सुपरिचित लालध्वजा लहराती है। इसमें गंगा और भगीरथकी प्रतिमाएँ हैं। कुछ फुट नीचे करीब २० फुट चौड़ी भागीरथी गरजती, गुंजार करती बहती है। यहाँसे उसकी लम्बी यात्रा आरम्भ होती है, जो उसे भारतवर्षके धूल-धूसरित मैदानोंसे होते हुए सागरतक ले जायगी। ऊपर काले भयकारी घने बादलोंसे ढकी हिमालयकी चोटियाँ हैं, जो अपनी पुत्रीकी रक्षामें सन्नद्ध खड़ी हैं।

गंगोत्रीसे १०० मील दूर केदारनाथ हैं, जहाँसे पवित्र नदी मन्दाकिनीका उद्‌गम है। केदारनाथमें शैवोंका श्रीकेदारेश्वरका पवित्र मन्दिर है, बारह ज्योतिर्लिंगोंमें यह नौवाँ है। यहाँका विग्रह शिवलिंगके परिचित विग्रहसे भिन्न आकारहीन चट्टानका टुकड़ा (वृषभकी पीठ) है।

बससे यात्रा करें तो करीब १०५ मील दूर बदरीनाथ और अलकनन्दा नदी है। यहाँ यात्री भगवान् विष्णुकी जयकार करते हुए आते हैं—'बदरीविशालकी जय।' उत्तर-पश्चिममें बदरीनाथ पर्वत (२३,५५५ फुट) और धुर उत्तरमें कामेट पर्वत (२५,४८३ फुट) है। बदरीनाथके दक्षिण-पश्चिममें नन्दादेवी (२५,६४५ फुट)-के पार्श्वसे ऋषि-गंगा निकलती है, आगे धौली-गंगासे संगम करती है और

* 'ब्रह्मद्रवा' से उद्‌धृत।

दोनों मिलकर अलकनन्दामें मिल जाती हैं (जोशीमठमें)। देवप्रयागमें अलकनन्दा-भागीरथीका संगम होता है और इसके आगे यह 'गंगा' कहलाती है।

शिवालिक पहाड़ियोंकी शृंखलामें उद्‌गमसे ३०० मीलकी यात्रा करनेके बाद गंगा मुक्त होकर हरिद्वारमें मैदानी क्षेत्रमें प्रवेश करती है। यहाँ नदीकी जीवन्ततामें भारी कमी आती है; क्योंकि इसका तीन-चौथाई जल एक विशाल बराजद्वारा गंगा नहरमें मोड़ दिया जाता है। यह नहर दोआब (गंगा-जमुनाके बीचकी भूमि)-की सिंचाईहेतु विक्टोरियन इंजीनियरोंने बनायी थी। इस नहरने अकालग्रस्त क्षेत्रको हरा-भरा समृद्ध बना दिया, किंतु इसके कारण नदीमें नौका-यात्रा सम्भव नहीं रही, अनेक मील आगेतक नदी छिछली है।

हरिद्वार—वैष्णवोंके लिये हरि या विष्णुका द्वार और शैवोंका हरद्वार सप्तपुरियों (मथुरा, माया, काशी, कांची, उज्जैन, अयोध्या, द्वारका)-में परिगणित एक नगर है। इस नगरमें एक ऊँची पहाड़ीपर दुर्गामाताका मनसा देवी मन्दिर है। यहाँसे नदीका भव्य नजारा मिलता है—बालुका-राशिभरे तटों और पथरीले किनारोंके बीच इठलाती नदी सहसा लुप्त हो जाती है और फिर शिवालिक पर्वतमालासे निकलकर प्रकट होती है। हर बारह वर्षपर होनेवाले कुम्भके अवसरपर यहाँ गहमागहमी बहुत बढ़ जाती है। बताते हैं कि सन् १९६२ ई० के कुम्भमें बीस लाख लोगोंने मुख्य स्नान पर्व १२ अप्रैलको यहाँ स्नान किया था।

× × ×

आगे मैदान है, जिसमें सागरकी ओर बहती गंगा यात्रा करती है। यह मैदान एक उपत्यका (वैली) है, जिसके उत्तरमें हिमालय है और दक्षिणमें विन्ध्य पर्वतमाला। यह ४ लाख वर्गमीलकी घाटी है, जो कहीं-कहीं २०० मील चौड़ी है। नदी बंगालकी खाड़ीतककी अपनी चार हजार मीलकी यात्रामें ऊँचाईसे करीब ७५० फुट नीचे उतरती है। जिन तीन राज्योंसे नदी गुजरती है, उनकी जनसंख्या १९ करोड़ (सन् १९७२ ई० के अनुसार)-से अधिक है अर्थात् भारतकी आबादीका एक तिहाई। ये राज्य हैं—उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल।

खदिर और भाभर—हरिद्वारसे नीचे पहले सौ मील गंगा सुनसान प्रदेशमें बहती है। दाहिनी ओर है खदिर (नीची भूमि—अगम्य दलदल विशेषतः वर्षा ऋतुमें और लम्बी पिच्छकयुक्त घास) और बायीं ओर जंगल है, जो गढ़वालमें हिमालयतक फैले हैं। शिवालिक पर्वतोंसे आयी चट्टानों और बोल्डरोंसे भरे संरंध्रतलवाले भाभरमें नदी और क्षीण होती है, कहीं-कहीं तो लोग अपनी नौका उठाकर एकाध मील चलते हैं।

नदी अपना पथ बदलती रहती है, आगेकी यात्रामें भी यही करती है और सम्भव है कहीं आप किसी 'बैक वाटर' (ठहरे हुए जल)-में फँस जायँ तो कहा नहीं जा सकता। सूखेके मौसममें प्रतिदिन एक-एक इंच करके नदी सूखती है और बहुधा जलस्तर एक फुटसे ज्यादा घट जाता है, कई स्थानोंपर तो जल होता ही नहीं।

गाँव बहुत थोड़े और दूर-दूर बसे हैं। यहाँ कोई यात्री नजर नहीं आता, यहाँतक कि साधु भी कभी कदाच ही दिखते हैं। पूरा क्षेत्र जंगली जानवरोंसे भरा है, वातावरण भयावह है, मानो भूत-प्रेत चीखते हों। स्थानीय निवासी जब भूखसे विकल हो जाते हैं तभी घरसे बाहर आते हैं और मछली मारते हैं।

इस क्षेत्रमें सरसों, चना, ज्वार, गेहूँ, चावल, मक्का और तम्बाकूकी फसलें होती हैं। सभी काम आदमी हाथसे करता है।

एक पारम्परिक गाँवमें करीब ४० आदिम झोपड़े (बिना खिड़कीके) होते हैं, जिनकी रखवाली खूँखार कुत्ते करते हैं। इक्का-दुक्का ठूँठ बने, गिद्धोंसे भरे शीशमके पेड़, अतीतके प्रहरी-से खड़े दिखते हैं।

हरिद्वारसे सौ मील आगे नदी शान्तभावसे बहती है और जाड़ेमें इसकी चौड़ाई आधा मील और वर्षामें उफनती बीस मीलतक फैल जाती है।

गरमीका ताप—जनवरीमें जाड़ेकी बरसातके बाद तापक्रम बढ़ने लगता है और अप्रैल आते-आते औसत ताप ९० डिग्री फारेनहाइटतक पहुँच जाता है—मई-जूनमें और बढ़ता है। मरुस्थलसे आती लू और बुरा हाल करती है और पारा भी एक सौ बीस डिग्रीतक छूने लगता है। कहीं-कहीं दिनमें कभी भीषण आँधी-तूफान

आता है तो तापक्रम गिर जाता है।

तब आता है 'मानसून' और बाढ़की पूर्णतापर नदी ३० फुटसे भी ज्यादा चढ़ जाती है। इलाहाबादसे ६०० मील दूर राजमहलमें प्रबल मोड़पर नदी बंगालकी खाड़ीकी ओर बढ़ जाती है। नदी एक सेकेण्डमें दस लाख घनफुट आयतनमें ६ नॉट (समुद्री मील) आगे बढ़ती है। इतना जल तो मिसीसिपीमें भी नहीं बहता और बाढ़ आनेपर ब्रिटेनमें टेम्स नदीके जलसे गंगा १५० गुना ज्यादा जल लेकर चलती है।

भाभरमें जहाँ प्रति मील बीस फुटकी ढलान है और आगे हर मीलपर एक मीलकी ढलान आती है और नदीका एक तट २-३० फुट ऊँचा और दूसरा नीचा मिट्टी और बालूभरा मिलता है। अब जल यहाँसे पथशेषतक माइकाके सूक्ष्मकणोंयुक्त कीच (सिल्ट)-से भरा रहता है, जो भारी अर्धठोस पीत वर्ण पिघले सीसे-सा पुंज बनाता है।

अपने निरन्तर बदले धारा-पथके कारण यह नदी अनेक नगरों और ग्रामोंके उत्थान-पतनके लिये जिम्मेदार रही है। उदाहरणार्थ, पटियाली नामक विध्वस्त नगर कभी नदीके तटपर बसा था, अब १८ मील दूर है। अभी भी बहुत-सी बस्तियाँ तटपर नदीमें समा जानेके लिये तत्पर हैं, तटवासी जैसे घासकी झोपड़ीमें बैठे तटके टूटनेकी प्रतीक्षा करते हैं।

भूले-बिसरे स्थान—नदी-तटपर जहाँ कभी मुगलोंके महल थे, इन भूले-बिसरे खण्डहरोंमें औरतें और लड़कियाँ कपड़ोंके ढेर लेकर धोने आती हैं और श्वेत वस्त्रधारी पुरुष शिव-मन्दिरमें पूजा करते हैं। यदा-कदा एक जुलूस आता दिखता है, सुनाई देती है **'राम नाम सत्य है'** की ध्वनि। ये शवको श्मशान ले जा रहे हैं। चारों ओर खण्डहर हैं—लाल पत्थरसे बने मन्दिरों, मस्जिदों, महलोंके खण्डहर जिनपर कालान्तरमें खर-पतवार उग आया है और ये चुपचाप खड़े रेड़ी, ज्वार, गेहूँ और गन्नेके खेतोंको निहारते हैं।

सहसा नदीमें नावें दिखने लगती हैं, बकरियों, साइकिलों और आदमियोंसे लदी नौकाएँ, मछली मारनेवाली नौकाएँ, जिनपर जालके गट्ठर लदे होते हैं, चौकोर पिच्छलवाली और पालवाली दो नौकाएँ आपसमें बँधी, एक पालके सहारे संतरण करती हैं।

जल-जन्तुओंमें रोहू, कतला, टेंगेरा, शोल और बान मछलियाँ दिखती हैं और साथ ही कोई घुमन्तू घड़ियाल, कभी कदाच ही मीठे पानीकी शार्क और डाल्फिन दिख जाती है। तटके पास किंगफिशर, घोमरा, जलकाक, श्वेत बगुले, चमचाचोंच, बत्तखें (किलकिला), हंस और लाल सारस दिखते हैं।

इलाहाबादमें नदी पुनः पूजनीया हो जाती है; क्योंकि यहाँ सच्चा प्रयाग है—गंगा, यमुना और सरस्वतीका संगम—तीन नदियाँ, जिनका उद्गम आसपास हुआ और फिर इनका मिलन १००० मील आगे आकर हुआ। कहते हैं यहाँ ब्रह्माने दशाश्वमेध यज्ञ किये थे। अतः यह यज्ञभूमिके रूपमें प्रसिद्ध हुआ।

हरिद्वारकी भाँति यहाँ विशेष भीड़ माघ मेलाके अवसरपर होती है (जनवरी-फरवरी)। यह मेला सूर्यके मकर राशिमें प्रवेशसे आरम्भ होकर कुम्भ राशिमें प्रवेशतक चलता है। माघ मेला हर वर्ष होता है, सिवा हर बारह वर्षपर पड़नेवाले कुम्भ मेलेको छोड़कर। कुम्भ-स्नान माघमें होता है। सूर्य जब मकर राशिमें हो और बृहस्पति कुम्भ राशिमें प्रवेश करे, वह कुम्भ स्नानका मुहूर्त होता है। अखाड़ोंके सन्त जो कुम्भ मेलेमें पधारते हैं, पहलेसे, परम्परानुसार कुम्भकी तिथि और समय घोषित कर देते हैं।

स्नानके महत्त्वपूर्ण दिनोंमें बीस लाख लोग अखाड़ों, डेरों, अकबरी किले और झूँसीकी ओरसे संगमकी ओर चल पड़ते हैं। सन् १९५४ में पूर्ण कुम्भ हुआ था और इसमें पचास लाख लोग आये थे। रथों, हाथियों और पालकियोंमें बैठे साधुओंके अखाड़ोंके जुलूस स्नानके लिये संगमकी ओर बढ़ रहे थे कि चन्द मिनटोंमें हजारों लोग भगदड़में दबकर मर गये।

मकर-संक्रान्ति (१४ जनवरीके करीब)-के दिन घण्टी, घण्टे, घड़ियाल, ध्वनि-विस्तारक और शोरगुलके बीच मानवोंका रंग-बिरंगा झुण्ड, जिसमें—न्यायाधीश, कर्नल, व्यापारी, ब्राह्मण और सीधे-सादे लोग मुक्तिलाभकी इच्छा लिये गंगामें अवगाहन करते हैं।

बनारसके गंगातटपर पूजाका क्रम निरन्तर चलता रहता है। वर्षपर्यन्त लोग यहाँ आते हैं, केवल माघ मेलेके

समय नहीं। बनारस हिन्दू-भारतकी सांस्कृतिक राजधानी है। यह शैवनगर है और यहाँ भी ब्रह्माने दस अश्वमेध करके इसे प्रसिद्धि दिलायी। दशाश्वमेध घाटके पास, जहाँ ये यज्ञ हुए थे, चारों ओर ६९२ मन्दिर हैं।

स्नान करनेके घाट—बनारसमें स्नानार्थ पाँच प्रमुख घाट हैं—पंचतीर्थ और नियत क्रमसे एक ही दिन सबकी यात्रा करनी होती है। इन पाँचमें एक है—पंचगंगा, यहाँ गंगामें चार अन्य पवित्र नदियाँ मिलती हैं। बनारसमें ७४ घाट हैं (एक मतसे ८४)। विभिन्न लोग विभिन्न उद्देश्योंसे इनका इस्तेमाल करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि घाटपर शवकी अन्त्येष्टि करना मुख्य उद्देश्य है। यह मुख्य श्मशान है। शवको मुक्तिधाम पहुँचानेके लिये ताँगा, नौका आदिकी कतार लगी रहती है।

सन्ध्याके समय एक छोटी-सी समितिके लोग घण्टा-घड़ियाल बजाकर आरती करते हैं। नदीमें दीपदान होता है, फूल-माला और मिष्ठान्नका प्रसाद चढ़ाते हैं। प्रयाग और उसके ऊपर स्थित स्थानोंकी सादगी बनारसमें नहीं मिलती।

बनारससे नीचे अनेक धार्मिक केन्द्र हैं, जिनका प्राकृतिक सादगीसे अभी नाता नहीं टूटा है। जहाँगीरा द्वीप (बिहारमें सुल्तानगंजके पास) ऐसा ही एक स्थान है। उत्तरवाहिनी गंगामें स्थित यह द्वीप चिकनी गोल-मटोल चट्टानोंसे बना है और नदीसे ७० फुट ऊपर उठा है। इसमें अजगवीनाथका शिव मन्दिर है। यहाँ शिलाचित्रोंमें विष्णु और उनके अवतार परशुराम तथा बुद्धके चित्र हैं। जहाँगीरासे नौकाद्वारा एक दिनकी यात्रा करनेपर और बंगालकी खाड़ीसे ३ मील दूर कोलगंज बड़ा मोहक और सुन्दर स्थल है। यहाँ एक विशाल द्वीपपर पेड़ों और चट्टानोंके बीच अनेक पुनीत साधुबाबा रहते हैं।

थोड़ा और नीचे चलें तो नागाबाबा नामक स्थान है, जिसके पीछे लम्बा पहाड़ है। इस पहाड़पर घने जंगल हैं, जिन्हें चौरासी मूर्ति कहते हैं; क्योंकि यहाँ बालूके पत्थरोंपर ८४ मूर्तियाँ हैं। इनमें एक हिन्दुओंद्वारा पूजित बुद्धकी मूर्ति है, जिसका एक पैर भग्न है।

और नीचे, बंगलादेशकी सीमासे ८० मील दूर भागीरथीकी एक धारा है (गंगोत्रीकी धारसे एकदम भिन्न) जो मुख्य धारासे अलग होकर कलकत्ताकी ओर बढ़ती है, जहाँ यह हुगली नदीके नामसे जानी जाती है।

यह बिछुड़ी धारा इतिहास समेटे मुर्शिदाबाद राज्यसे होकर बहती है, जहाँ नवाबी, डच और इंग्लिश कब्रिस्तान हैं, नीलके ध्वस्त कारखाने हैं, बैरकें हैं, जिन्हें दीर्घकालसे विस्मृत कर दिया गया है और जिनपर झाड़-झंखाड़ उग आये हैं। यह क्षेत्र जहाँ नदीने धारा बदलकर उसे सूखा छोड़ दिया है सीलनभरा, हरित और उपेक्षित है। हुगली, सन् १९४९ ई० तक फ्रांसीसी उपनिवेश रहे चन्दननगरसे होकर गुजरती है और यहाँ लोग अभी भी फ्रेंच भाषा बोलते हैं, फ्रेंच नामवाले हैं। आगे एक डच चर्च आता है, जूट मिलें हैं और कहीं भी सन् १९२० ई० के वनों, वृक्षों और मन्दिरोंका नामोनिशान नहीं है, बस मिलें लगातार धुआँ उगलती हैं, जो नदीको धूसर बना देता है।

नदीमें नावोंकी भरमार है—२०० फुट लम्बे मालवाही पोत, जिनपर भूसेकी टाल लदी होती है, लोगोंको पार ले जानेवाली नौकाएँ और मछुआरोंकी चम्पूवाली नौकाएँ।

यात्राका अन्तिम चरण—अन्ततोगत्वा, धाराके अनुप्रवाहमें हावड़ाका पुल उभरकर आता है, यह ब्रिटिश इंजीनियरोंके कौशलका प्रमाण है। इसपर बसों, ट्राम, टैक्सी और पैदल चलते लोगोंका जाम लगा रहता है। यहाँका शोरगुल नदीके ऊपरी भागके पास लगे मेलोंके शोरको भी मात कर देता है। हावड़ा पुलसे कुछ और नीचे कुछ छुटपुट मन्दिर हैं और पवित्र ताल हैं।

गंगाके शताधिक मुहानोंमेंसे एकपर स्थित सागरद्वीपके निकट हुगली सागरसे मिलती है। बंगालकी खाड़ीसे नीचे बलुई तटपर जिन दिनों हरिद्वार और प्रयागमें मेला होता है, हजारों यात्री यहाँ भी आते हैं। तीन दिनतक सगरके ६०,००० पुत्रोंके नरकसे उद्धारके बदलेमें सागरको रत्न चढ़ाये जाते हैं।

चार सौ मीलतक गंगाद्वारा लायी तलछटसे सागर धूसर हो जाता है। कोई नहीं बता सकता कि कहाँ गंगाका अन्त होता है, वैसे इसका उद्गम भी अज्ञात है।

[अँगरेजी अनु०—श्रीअनिकेन्द्रनाथ]

[हिन्दी अनु०—डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता]

सन्त टेऊँरामजीकी गंगाभक्ति

गंगा-माहात्म्यको लेकर संस्कृतमें शंकराचार्यकृत गंगाष्टक, पण्डितराज जगन्नाथकृत गंगालहरी, हिन्दीमें पद्माकरकृत गंगालहरी, महाराज रघुनाथकृत गंगाशतक, लेखराजकृत गंगाभरण, रत्नाकरकृत गंगावतरण प्रभृति ग्रन्थ उत्कृष्ट काव्यरत्न हैं। इन स्वतन्त्र ग्रन्थोंके अतिरिक्त चंदबरदायी, विद्यापति, सूर, तुलसी, केशव, मतिराम, हरिऔध, भारतेन्दु आदि अनेक कवियों ने माँ गंगा-सम्बन्धी रचनाएँ की हैं। इसी प्रकारसे प्रेमप्रकाशी पन्थके आचार्य

सद्गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराजने भी माँ गंगाकी महिमाका गुणगान किया है। श्रीटेऊँरामजी महाराजका जन्म अखण्ड भारतके सिन्धप्रान्तके हैदराबाद जिलेमें खण्डग्राममें हुआ था, आप लगभग ५५ वर्षतक इस धराधामपर रहे और आजीवन सनातन हिन्दू धर्मका प्रचार करते रहे। गंगाजीकी महिमाका वर्णन करते हुए वे कहते हैं—हे मन! तुम सदा गंगा-स्नान करो, गंगा-स्नान करो; क्योंकि गंगाजीमें स्नान करनेसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है—

गंगा का स्नान करि मन गंगा का स्नान।
गंगा के स्नान करनि मिल जाय भगवान॥

हिन्दुओंका जन्म-मरण गंगामय है। प्रत्येक धार्मिक कर्मकाण्डकी पूर्ति गंगाजलसे ही होती है। सतगुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराजने माँ गंगाके प्रति अपने भाव इस प्रकार व्यक्त किये हैं। वे कहते हैं—दीनोंपर कृपा करनेवाले हे प्रभो! मेरी यह प्रार्थना है कि मुझे अभयदान और गंगातटपर वास दीजिये। जिस समय चाँदनी रातमें तारे चमक रहे हों और ठण्डी हवा बह रही हो, उस समय मैं देवनदी श्रीगंगाजीके तटपर बैठा आपका नाम-जप करता रहूँ। न मुझे राज्यकी अभिलाषा है, न पुत्र और स्त्रीकी कामना है। मैं तो वनमें निवास करते हुए परमतत्त्वका विचार करना चाहता हूँ। मुझमें किसी प्रकारका पाप-ताप न रहे, दुःखादि द्वन्द्व न रहें। मुझे किसी प्रकारकी चिन्ता न रहे और मन प्रेमानन्दसे परिपूर्ण रहे। रात-दिन मेरी यही कामना है कि मुझे आपका दर्शन हो और सन्तोंका सतत दर्शन होता रहे। हे प्राणप्यारे! सुनो, मुझे आदि, मध्य और अन्त—सदैव तुम्हारा ही सहारा है—

सुनो दीनानाथ प्रभू अरज यह हमारा।
अभय दान देहि और गंगा का किनारा॥
चाँदनी की यामिनी में चमक रहे तारा।
सुरसरी तट नाम जपूँ चलत ठण्डी धारा॥
राज की न चाह मुझे चहूँ सुत न दारा।
चहूँ जंगल वास करूँ तत्त्व का विचारा॥
रहे नाहिं पाप ताप द्वन्द्व दूख सारा।
चिन्त किसी की न रहे होय दिल बहारा॥
रैन दिवस चाह यही दरस हो तुम्हारा।
और मुझे होत रहे सन्त का दीदारा॥
कहत टेऊँ टेर यही सुनो प्राण प्यारा।
आदि मध्य अन्त रहे तेरा ही सहारा॥

भगवती गंगाजीकी गौरव-गाथाका अनन्त विस्तार है। माँ गंगाजीकी गाथा भारतीय सनातन संस्कृति एवं सभ्यताकी पुण्यमयी गौरव-गाथा है। माँ गंगाजीकी सच्ची सेवा, पूजा, अर्चना उनके प्रति श्रद्धा एवं आस्थाको आत्मसात् करना है (माता गंगाके अमृत-प्रवाहको अपवित्र वस्तुओं अथवा गन्दगी/मैला डालकर हम गन्दा नहीं करें, माँ गंगाको स्वच्छ रखनेमें हम सहयोगी बनें। यह हमारी माँ गंगाके प्रति सच्ची आस्था-श्रद्धा होगी।) माँ गंगाजी साक्षात् स्वयं श्रद्धारूपा हैं। माँ गंगाजीके पावन श्रीचरणोंमें शत-शत नमन! **[प्रेषक—प्रेमप्रकाशी साधक]**

अकिंचन कौन ?

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

'परम अकिंचन प्रिय हरि केरे।'

भगवान्‌का एक नाम है—निष्किंचनजनप्रिय:, अत: यह जानकारी महत्त्वकी है कि निष्किंचन कौन है। जिसके पास कुछ नहीं है, क्या वह अकिंचन है?

'आपके पास कुछ नहीं है' का अर्थ क्या? आप रहते पृथ्वीपर ही हैं। आपके पास भवन भी होंगे, पशु-पक्षी भी होंगे और पदार्थ भी होंगे। यदि एक भिखारी किसी बैंकमें घुस जाय तो क्या बैंककी तिजोरीका रुपया उससे कुछ गज दूर होनेसे उसके पास है? उसका है?

एक सेठजीकी जेबमें केवल चेक-बुक है। जिस बैंकमें उनका रुपया है, वह इस समय उनसे सौ मील दूर है, तो क्या सेठके पास कुछ नहीं है? क्या वह निर्धन है?

धन भवनमें आपके पास, आपके घरमें है या आपकी तिजोरीमें, इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। उसपर आपका ममत्व है या नहीं, बात यह है। मुनीमके पास चाबी है और तिजोरी उसके बगलमें नोटोंसे भरी है; किंतु मुनीम धनी नहीं है। इसलिये कि तिजोरीका रुपया उसका नहीं है।

चाबी मुनीमके पास है, तिजोरी उसके पास है और धनी उस गद्दीका स्वामी सेठ है, जो भले वहाँसे कई सौ मील दूर बैठा हो।

'परम अकिंचन प्रिय हरि केरे।'

अकाल पड़ा तो सबसे अधिक भिखारी मरे। भूखसे तड़प-तड़पकर लाखों लोग मरे। बार-बार ऐसे अकाल पृथ्वीपर पड़े हैं। लोग इसलिये मर गये कि उनके पास कुछ नहीं था। तब क्या वे अकिंचन थे?

शरीरपर लँगोटी भी नहीं, टीनका फूटा कटोरा भी हाथमें नहीं और एक-एक दाना नालीमें-से चुनकर मुखमें डालता मानव—एक-दो नहीं, सैकड़ों, हजारों मानवोंकी ऐसी भीड़ जगत्‌ने देखी है, बार-बार देखी है; किंतु इनमें कोई अकिंचन नहीं था। यह भीड़ कंगालोंकी—दरिद्रोंकी थी। तब अकिंचन कौन?

अकिंचन दिगम्बर अवधूत भी हो सकता है और वह मिथिलानरेश भी, जिसने कह दिया—

'मिथिलायां दह्यमानायां न मे दह्यत किञ्चन।'

मिथिला जल रही है तो जले! इसमें मेरा तो कुछ जल नहीं रहा है।

कौड़ी गाँठ न बाँधहिं भीख माँगि नहिं खायँ।
तिनके पीछे हरि फिरैं जनि भूखे रहि जायँ॥

ये अकिंचन हैं, जो शरीरको अपना नहीं मानते।

पड़ोसीका कुत्ता खाय या भूखों मरे, हमसे मतलब। जो कह देते हैं—'यह शरीररूपी कुत्ता मेरा नहीं है। यह ईश्वरका है। उसे टुकड़ा डालना हो डाले, न डालना हो मत डाले। इस कुत्तेका दर्द मेरे सिरमें नहीं होता।'

आप समझे? अकिंचन वह नहीं है, जिसके पास कुछ नहीं है। वह भी नहीं है, जो किन्हीं पदार्थोंपर अपना स्वत्व नहीं बना सका है। कुछ पास हो या न हो, वासनावान् पुरुष अकिंचन नहीं हुआ करता। अकिंचन वासनाहीन पुरुष। देह एवं दैहिक किसीमें जिसकी आसक्ति नहीं है, वह अकिंचन है।

कंगाल—दरिद्र अकिंचन नहीं है। भूखों मरता है दरिद्र, और दरिद्र केवल पदार्थ न होनेसे ही अकिंचन मनुष्य नहीं होता।

'स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।'

पदार्थभावके अनुभवसे जो संतृप्त है, वह करोड़पति भी दरिद्र है। वासनावान्—तृष्णावान् पुरुष दरिद्र है। उसके पास धन, भवन, पदार्थ कितने हैं, कितने नहीं हैं, यह प्रश्न नहीं है।

दरिद्र निष्ठुर होता है और स्वार्थी होता है। इसलिये दरिद्र दुखी रहता है और परिस्थिति बिगड़े तो अकालमें एड़ियाँ रगड़-रगड़कर भूखसे दाने-दानेको तड़प-तड़पकर मरता है।

अकिंचन दरिद्र नहीं है, वह फक्कड़ है, वह वासनाहीन है। अत: अपने साथ अपने अन्त:करणके साथ किसीकी आसक्ति नहीं बाँधता। इसलिये वह श्रीहरिका परमप्रिय है।

अकिंचन कंगाल नहीं है। सम्राटोंका सम्राट् परमात्मा उसके साथ रहनेको विवश है। अभावसे सारी सृष्टि मर जाय तो मर जाय, पर अभावकी छाया भी उसे छूनेमें समर्थ नहीं है।

अकिंचन—अपना कुछ नहीं। 'मैं मेरा' ही जब कहीं नहीं बँधा तो माया देवी उसका क्या कर लेगी? कष्ट, पीड़ा, अभाव तो मायाके राज्यमें रहते हैं और मायाको अँगूठा दिखा दिया है उसने।

अकिंचन—सृष्टिमें जब अपना कुछ नहीं रहता, तब सब जिसका है, वह नारायण अपना हो जाता है। नारायण जिसका अपना है, वह क्यों छोटी पोटली बाँधे?

ऐसी अकिंचनता धन्य है।

तीर्थाटन—

यमुनोत्तरी

[यात्रा-संस्मरण]

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

मैं सन् १९४५ ई० में अपने माता-पिताके साथ बदरी-केदार जा चुका था। उन दिनों यमुनोत्तरी-गंगोत्तरी बहुत कम यात्री जाते थे। पहाड़ोंकी तलहटीमें ऊबड़-खाबड़ सँकरी-पथरीली पगडंडियाँ, मार्गमें दूर-दूरपर चट्टियाँ और दूकानें, फिर साथी यात्री भी कम मिलते थे, इसलिये केवल साधु-संन्यासी या थोड़े-से साहसी यात्री ही उत्तराखण्डके चारों तीर्थोंकी यात्रा कर पाते थे।

सन् १९७१ ई० के अगस्तमें समाचार-पत्रोंमें मैंने पढ़ा कि उत्तर प्रदेश-सरकारने यमुनोत्तरी-गंगोत्तरी-मार्गको पर्याप्त दूरतक मोटर जाने योग्य बना दिया है, आवास तथा खाने-पीनेकी सुव्यवस्था भी कर दी है।

उन दिनोंमें मैं कानपुरमें रहता था। मेरे मित्रोंने सुझाव दिया कि हमें उत्तराखण्डके चारों तीर्थोंकी यात्रा करनी चाहिये। मैं तुरंत तैयार हो गया। दूसरे दिन ही एक नयी एम्बेसडर कारसे हम चार साथी इस तरहसे इस दुर्गम और लम्बी यात्राके लिये रवाना हो गये, जैसे किसीकी बारातमें जा रहे हों।

लोगोंने सलाह दी कि वर्षाके मौसममें यह यात्रा नहीं करनी चाहिये, पहाड़ नीचेकी ओर खिसकते रहते हैं, मार्ग बन्द हो जाते हैं, ऊपरसे गिरते हुए पत्थरोंसे चोट लगनेका भी भय रहता है, परंतु हम तो माँ गंगाके पीहर—अपने ननिहालमें जा रहे थे, हमें डर किस बातका होता?

उत्तराखण्ड-यात्राकी पुस्तकें पढ़कर हमने थोड़ी-सी दवाएँ, मोमजामें, छाते, गरम कम्बल, रबरके जूते, खाने-पीनेका सामान, एक स्टोव और दो लालटेन साथमें ले ली थीं।

रातमें बरेली ठहरे। दूसरे दिन सायंकाल हरिद्वार पहुँचे। वहाँ जैपुरिया अतिथि-गृहमें ठहर गये। यह गंगा-किनारे अच्छा, बड़ा मकान है, यहाँ भोजनकी सुव्यवस्था है। सायंकाल हरकी पैड़ीपर स्नान किया। मार्गकी सारी थकावट मिटकर मन प्रसन्न हो गया। गंगा-किनारे दूरतक पक्का चबूतरा बना हुआ है। वहाँ हजारों स्त्री-पुरुष टहल रहे थे, भजन गा रहे थे, कथा सुन रहे थे और चाटके खोमचेवालोंके आस-पास खड़े हुए नाश्ता कर रहे थे। एक प्रकारका विराट् मेला-सा लगा हुआ था। स्नान करके हम गंगा-किनारे एक बेंचपर बैठ गये। दो-तीन लड़के तेलकी शीशियाँ लिये हुए धूम रहे थे। हमने सिर-चम्पी करायी।

दूसरे दिन प्रात: नाश्ता करके हम ऋषिकेशके लिये रवाना हो गये। बाबा कालीकमलीवालेके कार्यालयमें गये। वहाँसे आगेके लिये परिचय-पत्र लिये। यह संस्था

उत्तराखण्ड-क्षेत्रकी गत कई वर्षोंसे अद्भुत सेवा करती आ रही है। प्राय: सभी स्थानोंमें इनके विश्राम-गृह और अन्न-क्षेत्र बने हुए हैं, यहाँ यात्रियोंको आवासके सिवा ओढ़ने-बिछानेके कम्बल भी उधार मिल जाते हैं।

ऋषिकेशमें हमें ज्ञात हुआ कि पहले यमुनोत्तरी जाकर फिर गंगोत्तरी जाना चाहिये। भगवान् श्रीरामके दर्शनोंके लिये संत तुलसीदासजीको भी पहले हनुमान्‌जीकी आराधना करनी पड़ी थी।

गर्मीके मौसममें हरिद्वार और ऋषिकेशके पहाड़ोंके पत्थर दिनमें तप जाते हैं। हम शीघ्र ही ऊपर चले जाना चाहते थे, इसलिये भोजन करनेके थोड़ी देर बाद ही हम नरेन्द्रनगर और टेहरीके लिये प्रस्थित हुए। दस मीलके पश्चात् हम चलकर चार हजार फीटकी ऊँचाईपर नरेन्द्रनगर पहुँच गये। यह छोटा-सा सुन्दर कस्बा पुराने टेहरी-राज्यका प्रमुख स्थान है। हम यहाँ ठहरे नहीं, इकतालीस मील आगे टेहरीके लिये चल पड़े।

टेहरी कस्बा पहाड़की तराईमें है। हम फिर २२०० फीट नीचे उतर आये थे। हवामें गर्मी थी। पुराने राजाकी राजधानी टेहरी देहरादून-मंसूरीके सीधे मार्गपर होनेके कारण अच्छी, बड़ी व्यापार-मण्डी है।

वहाँ हमने थोड़ी देर विश्राम किया, उसके बाद अल्पाहार कर छब्बीस मील आगे धरासूके लिये रवाना हो गये। धरासू गंगोत्तरी-यमुनोत्तरीके मार्गका जंक्शन है, इसलिये यहाँ पर्याप्त चहल-पहल रहती है। भागीरथीके किनारे एक पुराना टूटा-सा मन्दिर था, वहीं हम ठहर गये। हम कानपुरसे ही तय करके चले थे कि जहाँतक सम्भव होगा स्वयं बनाकर सादा गर्म भोजन करेंगे। इसलिये स्टोव जलाकर, चावल-दाल-आलू-मटर आदि मिलाकर 'पंचमेल' खिचड़ी बनायी। उस दिनकी खिचड़ीमें जो स्वाद आया, वह तो अनुभवकी ही वस्तु है। सचमुच स्वाद भूखमें है और भूख यथेष्ट श्रमसे जाग्रत् होती है।

धरासूकी ऊँचाई लगभग चार हजार फीट है। मौसम स्वच्छ था। हम मन्दिरके पास चबूतरेपर ही कम्बल बिछाकर सो गये। दूसरे दिन प्रात: उठकर नित्य-कर्मसे निवृत्त हो, ऊपर एक दूकानपर गरम-गरम पकौड़ी और चायका नाश्ता करके हम आगेके लिये चल पड़े। आज यात्रा तो केवल पचास मीलकी ही थी, परंतु मार्ग पर्याप्त ऊँचा-नीचा था। सड़क भी पिछले दो वर्षोंमें ही बनी थी, अभी भी काम पूरा नहीं हुआ था। कहीं-कहीं सुरंग लगाकर रास्ता चौड़ा करनेके लिये पहाड़ तोड़े जा रहे थे। हम धीरे-धीरे चलकर पाँच घण्टेमें नौ हजार फीट ऊँचाईपर दण्डोटी गाँवमें जाकर ठहरे। मोटर-रोड यहींतक थी। अब यहाँसे आगे यमुनोत्तरीतक बारह मील पैदल जाना था। मार्ग भी कठिन चढ़ाईका था, इसलिये उस दिन यहीं ठहरनेका निश्चय किया गया।

चार-पाँच वर्ष पहले यह सम्भवत: छोटी-सी चट्टी थी, परंतु अब यमुनोत्तरीका मार्ग सुगम हो जानेसे यात्री बहुत आने लगे हैं, इसलिये यहाँ नये-नये मकान और दूकानें बन गयी हैं। हमने एक कमरा पाँच रुपये किरायेपर लिया। बिस्तर खोलकर आराम करने लगे। भूख लग आयी थी, परंतु भोजन कौन बनाये, नाइयोंकी बारातमें सभी ठाकुर। कानपुरमें लिया हुआ व्रत तीसरे दिन ही टूट गया, हलवाईकी दूकानसे पूड़ी-मिठाई लेकर क्षुधा शान्त की गयी। रातमें पहले दो दिनोंकी यात्राकी चर्चा चलने लगी।

हम ऋषिकेशसे एक सौ पचीस मील आ गये थे। आजसे तीस वर्ष पहले यात्रियोंको इतनी यात्रामें दस-बारह दिन लग जाते थे। रुपये और साधनोंकी कमी रहती थी, इसलिये अधिकांश यात्रियोंको सामान सिरपर लेकर चलना पड़ता था। दस-बारह मील चलकर दोपहर और रात्रिमें मार्गकी किसी चट्टीपर ठहर जाते। रातमें भजन-कीर्तन और कथा-वार्ता होती। दूकानदार, भारवाही कुली, घोड़ेवाले, डाण्डीवाले और छोटे-छोटे मन्दिरोंके पुजारी आदि बहुत-से लोगोंके परिवारोंका पालन-पोषण होता था। आज वे सब बेकार हो गये हैं। चट्टियोंकी दूकानें सूनी पड़ी हैं, अधिकांश टूट गयी हैं। उन दिनों यात्री मार्गके कष्टोंको दु:खदायी न समझते,

प्रत्युत एक प्रकारकी कठिन तपस्या मानकर मनमें संतोषका अनुभव करते थे। अब वे बातें समाप्त-सी हो गयी हैं।

हमने अतिरिक्त सामान और मोटर वहीं मकान-मालिककी सँभालमें रख दी तथा दूसरे दिन प्रात: उस बारह मीलकी कठिन पैदल यात्रापर प्रस्थित हुए। मेरे पैरोंमें दर्द था, इसलिये एक घोड़ा कर लिया गया। शेष सब लोग हाथमें लाठी लिये पैदल चले।

अब हम सात हजार फीटकी ऊँचाईपर चल रहे थे। खुमानी और चीड़के वृक्ष पीछे छूट गये थे, फिर भी जमीन और पहाड़ हरे-भरे थे। ठण्डी मादक हवा जोरोंसे चल रही थी, एक ओर ऊँचे पहाड़ थे, दूसरी ओर बहुत नीचाईमें यमुना तीव्र गतिसे दौड़ती-सी जा रही थीं। राणागाँवतक दो मीलका मार्ग इतना विकट था कि लगता था, जैसे दस मील चले हों। चार घण्टेमें हम हनुमानचट्टी पहुँचे। सम्भवत: इसी तरहके मार्गोंके लिये कहावत बनी थी—***'नौ दिन चले अढ़ाई कोस।'***

हमें आज रातमें जानकीचट्टीपर ठहरना था, वह यहाँसे चार मीलपर थी। पण्डाजीने कहा कि यह मार्ग पीछेवालेसे भी कठिन है; अत: सब लोग हल्का भोजन कर दो बजे चलें। आरम्भके एक मीलमें ही मेरे एक मित्र तो बहुत थक गये, परंतु बीच मार्गमें डाण्डी और घोड़े नहीं मिलते; इसलिये साथके यात्री-दलोंमें कुछ वृद्ध स्त्री-पुरुषोंको पैदल चलते देखकर किसी प्रकार साहस बटोरकर वे आगे बढ़ते रहे। दुर्योगसे बूँदा-बूँदी आरम्भ हो गयी। मोमजामे और छाते साथमें थे, परंतु हवाकी ठण्डक और तीव्रता बढ़ गयी। अन्ततोगत्वा छ: बजे सायंकाल हम जानकीचट्टी पहुँच गये। दूसरे यात्री-दल भी आ गये थे। जगहकी तंगी थी, इसलिये सब परेशान थे। उस समय कालीकमलीवालेके परिचय-पत्रने बड़ी सहायता दी। हमें ऊपरके तल्लेपर एक कोठरी मिल गयी।

जानकीचट्टी लगभग दस हजार फीटकी ऊँचाईपर है। यहाँसे बर्फीली चोटियाँ दिखायी देती हैं मैंने साथियोंको बाहर चलकर प्राकृतिक सौन्दर्य और ईश्वरकी अद्भुत रचनाका साक्षात्कार करनेको कहा, परंतु वे सब तो गरम पानीमें नमक डालकर पैरोंको सेंक रहे थे। पिछले दिनकी काव्य और साहित्य-चर्चा आज बन्द थी। वर्षाके कारण रात पर्याप्त ठण्डी हो गयी थी; परंतु हमलोग थके हुए थे, अत: लेटते ही गहरी नींद आ गयी।

दूसरे दिन प्रात: साथके यात्रियोंका यमुना-जयघोष और भैरवी रागके भजन सुनकर हम जागे तो देखा, वर्षा रुक गयी थी और आकाश स्वच्छ था।

आज हमें यमुनोत्तरीकी चढ़ाई चढ़नी थी। अगले चार मीलमें दस हजार फीटकी ऊँचाई थी; अत: हम सूर्योदय होते ही रवाना हो गये। शीतल-मन्द समीर बह रहा था। वन-प्रान्तमें नाना प्रकारके वृक्ष और लताएँ थीं। हम उल्लासभरे मनसे आगे बढ़ते जा रहे थे। उस समय हमें बरबस जयदेव कविका यह भजन याद आ गया—

'धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली।'

(गीतगोविन्द ५। प्र० ११। २)

मार्ग कहीं पथरीला तो कहीं रेतीला था। दस बज गये थे। वापस लौटते हुए यात्री मिलने लगे। दोनों ओरसे 'जय यमुना मैया' की ध्वनि गूँज रही थी। सान्त्वना मिलती कि आगेका मार्ग अच्छा है, परंतु यह तो हम प्रारम्भसे ही सुनते आ रहे थे, इसलिये जानते थे कि यह केवल धीरज बँधानेकी बात है।

आज मेरे मित्र भी घोड़ोंपर थे, इसलिये फिर उन्हें काव्य-चर्चा याद आ गयी। वे पहाड़ोंकी कहीं-कहीं पीली और सफेद चमकती हुई मिट्टीको देखकर वहाँ सोना और चाँदी होनेकी सम्भावना प्रकट कर रहे थे। लगभग बारह बजे हम उस पतितपावनी पवित्र यमुनोत्तरीकी घाटीमें पहुँच गये, जिसके विषयमें बचपनसे ही सुनते आ रहे थे।

सामने ही बीस हजार सात सौ फीट ऊँचा

बन्दरपूँछ हिमशिखर है। कहते हैं, हनुमान्‌जी अयोध्या-आगमन और राजतिलकके बाद भगवान् श्रीरामसे आज्ञा लेकर इसी चोटीपर रहने लगे थे। इसी बन्दरपूँछके एक भाग कलिन्दगिरिसे यमुना निकली हैं, इसलिये यमुनाका एक नाम 'कालिन्दी' भी है।

गंगोत्तरीसे बारह मील ऊपर गोमुखतक तो बहुत यात्री जाते हैं, परंतु कलिन्दगिरिपर अभीतक किसीके जानेकी बात नहीं सुनी गयी।

यमुनोत्तरी आकर श्रद्धालु यात्री सचमुच आत्मविभोर हो जाते हैं। सूर्यकी पुत्री और यमकी बहनका साक्षात्कार करके अपने जीवनको धन्य मानते हैं। अधिकांश यात्री मई-जूनमें आते हैं, इसलिये भीड़ अधिक न थी। हमें बाबा कालीकमलीवालेकी धर्मशालामें पर्याप्त स्थान मिल गया।

पूछनेपर पता चला कि वहाँसे केवल चार मीलपर ही यमुना-मुख है। आजसे पचास वर्ष पहले स्वामी रामतीर्थ वहाँ जा भी चुके थे, जब न तो बर्फ काटनेके औजार थे न रस्सीकी सीढ़ियाँ ही। सोचा, हम भी क्यों न वहाँ जानेका प्रयत्न करें, परंतु किसीने भी साहस नहीं किया, सब निराशाकी बातें करने लगे। कहने लगे—'स्वामी रामतीर्थकी बात और थी, वे तो यमुनोत्तरीसे सीधे गंगोत्तरी भी चले गये थे, जब कि आजतक सुदक्ष पर्वतारोहियोंकी भी ऐसी हिम्मत नहीं हुई।'

लकड़ीके एक हिलते हुए पुलसे हम उस पार पहुँचे। वहाँ यमुनाजीका छोटा-सा मन्दिर और तीन तप्त कुण्ड हैं। द्वितीय कुण्डका जल आरम्भमें तो बहुत गर्म लगता है, परंतु एक बार भीतर उतरनेपर बाहर निकलनेका मन नहीं करता। उसमें स्नान करनेसे पिछले तीन दिनोंकी सारी थकावट मिट गयी।

शामके भोजनके लिये एक पोटलीमें चावल और आलू बाँधकर प्रथम कुण्डमें डुबो दिये गये। कुण्डके पानीका तापमान १९७ डिग्री है, जब कि बाहरका रहता है—बीससे पचपनतक। आस्ट्रिया और जर्मनी इस प्रकारके गर्म कुण्डोंके स्नान-लाभका प्रचार करके अरबों रुपये प्रतिवर्ष कमा लेते हैं।

रात्रिमें यमुना मैयाकी आरती करके स्वयं पकी हुई चावल-दालकी सुस्वादु खिचड़ी खाकर हम भी साथी यात्रियोंके साथ भजन-कीर्तनमें बैठ गये।

संयोगसे वहीं एक महात्मा ठहरे हुए थे। वे कई वर्षोंसे हिमालयके विभिन्न भागोंमें घूमते रहे हैं। उन्होंने बताया कि जिस छाया-पथसे स्वामी रामतीर्थ यमुनोत्तरीसे गंगोत्तरी गये थे, उसकी दूरी केवल बीस-बाईस मील है, जब कि आम चालू मार्ग सौ मील है।

बहुत प्रयत्न करनेके बाद भी वे महात्माजी उस मार्गसे नहीं जा सके थे। उनका कहना था कि जितनी दूरतक गये और उनकी दृष्टि गयी, उन्हें ऐसा लगा कि स्वर्ग-नरकका नियन्त्रण करनेवाले देवाधिदेवका सिंहासन यही है।

दूसरे दिन जब हम प्रातः उठे, तब मन प्रफुल्लित और प्रसन्न था। रात्रिमें अच्छे स्वप्न आये थे। हमने माताके मन्दिरमें जाकर चीर (वस्त्र) चढ़ाया और पूजन किया। ऊपरकी गुफामें एक महात्मा रहते हैं, सब लोग उनके दर्शन करने गये। कहते हैं, पिछले बीस वर्षोंसे वे सर्दी-गर्मी—बारहों महीने यहीं रहते हैं। शीतकालमें जब बर्फ जम जाती है, तब एक कुदालसे बर्फ काटकर केवल नित्य-कर्म करने-हेतु थोड़ी देरके लिये बाहर निकलते हैं, फिर दिन-रात गुफामें ही रहते हैं। भक्तलोग उनके लिये छः महीनोंका सामान जमा करके रख देते हैं। वे मौन थे, इसलिये बात न हो सकी। हम चरण-धूलि लेकर चले आये।

वैसे तीर्थस्थानमें तीन रात्रि रहनेका माहात्म्य है, परंतु हमें तो जैसे माँ गंगा बुला रही थीं, इसलिये यमुनाजीकी उस पुण्य-भूमि तथा नैसर्गिक शोभासे परिवृत अदृश्य शक्तिको शत-शत प्रणाम कर उसी दिन वहाँसे लौट पड़े।

[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

सन्त-चरित

सिद्ध सन्त श्रीवासुदेवानन्दजी सरस्वती [टेम्बे स्वामी]

(श्रीगणेश वेंकटेशजी सातवलेकर)

सावंतवाडी संस्थानके माणगाँवमें संवत् १९११ वि० में महाराजका जन्म हुआ। आपका उपनाम टेम्बे, गोत्र अत्रि, वर्ण ब्राह्मण (ऋग्वेदी, महाराष्ट्र) और नाम वासुदेव था। आपके पिताका नाम गणेश भट्ट और माताका रमाबाई था। पिता बड़े सीधे-सादे, सात्त्विक, विरक्त पुरुष थे; घरमें बहुत कम रहते, प्राय: गाणगापुरमें ही रहकर श्रीगुरु दत्तात्रेय भगवान्‌की उपासनामें लगे रहते थे। इससे इनके गृह-प्रपंचका भार इनके पिता अर्थात् महाराजके दादा हरभट्टजीपर ही था, जो कर्मनिष्ठ वैदिक थे और भिक्षुकी वृत्तिसे कुटुम्ब-परिवारका पोषण करते थे। महाराजका लालन-पालन इन्हींके द्वारा हुआ और प्राथमिक शिक्षा भी महाराजको इन्हींसे मिली। महाराजकी बुद्धि बड़ी तीव्र और धारणा बड़ी दृढ़ थी। जो कोई पाठ दो-चार बार सुन लेते थे, वह कण्ठ हो जाता था। इस तरह दादाजीसे इन्होंने लिखना-पढ़ना, शिक्षा-चतुष्टय, भगवान्‌के अनेक स्तोत्र, अमरकोश आदि उपनयनके पूर्व ही लीलामात्रसे सीख लिया था। ९वें वर्षमें महाराजका उपनयन हुआ।

बचपनसे ही महाराज नियमोंके बड़े पक्के थे। जो कोई नियम इनके लिये बनाया जाता, उसका उल्लंघन ये कभी न करते थे। उपनयनके पश्चात् सन्ध्या-वन्दन, औपासन, गुरुचरित्रपाठ, पंचायतनपूजा और पंचमहायज्ञ आदि नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके यथाविधि करनेमें इन्होंने कभी कोई त्रुटि नहीं की। यात्रामें भी सूर्योदय और सूर्यास्तके पूर्व स्नान करके भगवान् सूर्य-नारायणको अर्घ्य प्रदान करना इनके सम्पूर्ण जीवनमें एक बार भी नहीं टला। नियमका वे कोई अपवाद नहीं मानते थे और प्रत्येक कर्मको विधिपूर्वक करते थे। दूसरोंके लिये भी उनका यही आग्रह था। ये जब ११ वर्षके हुए, तब दादा हरभट्टजीका देहान्त हुआ और प्रपंचका सारा भार इनपर पड़ा। घरमें सोलहों दण्ड एकादशी थी, सिरपर ऋणका बड़ा भारी बोझ था, पैतृक स्वत्व भाई-बन्धु हड़प चुके थे! पर इस अवस्थामें महाराज जरा भी नहीं डिगे, धैर्यके मानो मेरु बन गये। इसी समय इन्होंने वेदमूर्ति विष्णुभट्टजी उकिडवे और वे० भू० भास्करभट्ट ओलकरके समीप जाकर यथाविधि एकान्तमें बैठकर वेदाध्ययन किया। भोजन कभी मामाके घर जाकर कर लेते या गुरुजीके यहाँ ही स्वयं भात बनाकर खा लेते थे। इनकी अलौकिक बुद्धिमत्ता, अद्वितीय धारणाशक्ति और अभ्यासविषयक नियम देखकर गुरुजी (विष्णुभट्टजी) कहा करते थे कि 'वासुदेव देव ही होनेवाला है।' उपनयन हो चुकनेके बादसे वे सदा शौचाचारसे रहे, कभी किसीका दान नहीं लेते थे, परान्न और श्राद्धान्न कभी ग्रहण नहीं करते थे, भोजन बड़ी पवित्रतासे करते थे। एकादशी और सभी जयन्ती-तिथियोंको निराहार रहकर जागरण करते थे, सदा सत्य और मित भाषण करते थे। अखण्ड ब्रह्मचर्य, शान्ति और वैराग्यकी मूर्ति बनकर त्रिमूर्ति भगवान् श्रीदत्तात्रेयकी अनन्य निष्ठासे उपासना करते थे। इस प्रखर तपके कारण उनके सामने सब प्रकारकी सिद्धियाँ सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं। पर इनमेंसे किसी भी सिद्धिका उपयोग उन्होंने अपने लिये नहीं किया। किसी-किसी प्रसंगसे कोई-कोई सिद्धि प्रकट हो जाती थी।

एक बार महाराज और उनके सहाध्यायी वैदिक मन्त्रोंकी अद्भुत सामर्थ्यकी चर्चा करते हुए भगवान् श्रीगणेशको पुष्पांजलि चढ़ाने जा रहे थे। रास्तेमें एक साँप

दीख पड़ा। सहाध्यायियोंने कहा कि यह अच्छा अवसर है, किसी वैदिक मन्त्रकी सामर्थ्य अब प्रकट करके हमें बताइये। महाराजने कहा—'अच्छा', और उस साँपके चारों ओर थोड़ी मिट्टी डाल दी और एक वैदिक मन्त्र कहा। बस, वह साँप उसी घेरेमें अटक गया। दूसरे दिन महाराज अपने साथियोंको लेकर फिर उसी स्थानमें गये। साँप वहीं अटका पड़ा रहा। महाराजने जरा-सी मिट्टी हटाकर मिट्टीकी रेखा काट दी। त्यों ही साँपको रास्ता मिला और वह तीर-सा सनसनाता हुआ वहाँसे निकल गया।

महाराजकी एक बहन थी। उसके एक मरकही गाय थी, दूध देती हुई लात झाड़ा करती थी। एक बार उसने महाराजसे कहा—'भैया, इस गायको किसी तरह सीधा कर दो।' महाराजने गायपर स्तम्भन मन्त्र छोड़ा, तबसे वह गाय स्तम्भ-सी खड़ी होकर दूध देती थी। पिशाचोंपर महाराजने अनेक बार मन्त्र-प्रयोग किया। आपकी मन्त्र-सिद्धिसे बहुत लोगोंका उपकार हुआ।

महाराज स्वयं तो विवाह करना नहीं चाहते थे, पर गुरुद्वयकी आज्ञा शिरोधार्य मानकर उन्होंने विवाह किया। उनकी धर्मपत्नीका नाम अन्नपूर्णाबाई था। विवाह करके इन्होंने स्मार्ताग्नि रखी और दर्शपूर्णमास, स्थालीपाकेष्टि आदि सब नियमपूर्वक करते रहे। महाराज बड़े मातृभक्त थे। माताके दर्शन होते ही ये उन्हें प्रणाम करते थे। उनकी आज्ञाका उन्होंने कभी उल्लंघन नहीं किया। एक दिन स्वप्नमें एक ब्राह्मणने आकर इनसे पूछा, 'तुम नरसोबाकी बाड़ी क्यों नहीं आते हो?' इसपर इन्होंने उत्तर दिया, 'माताकी आज्ञा नहीं है।' ब्राह्मणने कहा, 'यहाँ जो कोई आना चाहता है, उसे कोई नहीं रोकता।' बस, स्वप्नभंग हुआ, ये जाग उठे। तुरंत माताके पास आकर इन्होंने स्वप्न सुनाया। माताने बाड़ी जानेकी अनुमति दी और महाराज तुरंत चल पड़े।

नरसोबाकी बाड़ी पहुँचे, उसी रातमें श्रीदत्तात्रेय भगवान्‌का साक्षात् दर्शन हुआ। फिर सद्‌गुरु गोविन्द स्वामी भी मिले। कुछ काल वहीं रहकर महाराजने दत्तोपासना की और फिर घर लौटे।

एक बार इन्होंने पूर्वोत्तरांगसहित चान्द्रायण-व्रतका आरम्भ किया, इससे इनके रक्त गिरनेकी बीमारी लग गयी। इस बीमारीसे जब किसी कदर उठे तब दत्तजयन्तीके निमित्त नरसोबाकी बाड़ी गये। उनके साथ माताजी भी थीं। श्रीदत्तने दोनोंको बालूके मैदानमें बालरूपमें दर्शन दिये और बताया कि सात वर्ष और माणगाँवमें रहना होगा। श्रीदत्तकी आज्ञाके अनुसार कागल नामक स्थानसे वराभयकर सिद्धासनस्थ दत्तमूर्ति लाकर उसके लिये एक छोटा-सा मन्दिर बनवाया और संवत् १९४० वैशाख शुक्ल पंचमीके दिन उसकी चलार्चा स्थापित की। तबसे महाराज इसी मन्दिरमें रहने लगे, घर जाना उन्होंने छोड़-सा ही दिया। कच्चा अन्न भिक्षा माँगकर लाते, उसीसे वैश्वदेव करके भगवान्‌को भोग लगाकर प्रसाद पाते थे। सतत सात वर्ष महाराज इसी व्रतसे रहे।

इस प्रकार श्रीदत्त भगवान् जबसे माणगाँवमें आकर रहे, तबसे यहाँ बड़े-बड़े महोत्सव होने लगे। हजारों यात्री और दर्शनार्थी आने लगे। रात नौ बजेकी निकली हुई पालकीमें भगवान्‌की सवारी तीन परिक्रमा करके भोरमें तीन-चार बजेके लगभग लौटती थी। गुरुद्वादशी-जैसे महोत्सवपर दस-दस हजार आदमी भोजन कर जाते थे। भगवान्‌के सामने फल-फूल, नारियल और मेवे-मिठाइयोंके ढेर लग जाते थे, पर महाराज यह सब निःशेष बँटवा देते थे। श्रीदत्त भगवान्‌की सेवा और महाराजकी कृपासे कितने लोगोंके मनोरथ पूर्ण हुए, उनकी गणना करना असम्भव है। महाराज उपासक थे, ज्योतिषी थे, धर्मशास्त्रज्ञ थे, सिद्ध वैदिक थे और पूर्ण योगाभ्यासी भी थे। योगाभ्यासके लिये गुहामें जा बैठते थे, कभी-कभी गुहाके द्वारपर शेर आकर बैठता था। महाराज जब भगवान्‌को भोग लगाते तब प्रायः भगवान् प्रकट होकर नैवेद्य ग्रहण करते थे। महाराजके श्रीदत्तमन्दिरमें साँप दो-दो महीने पड़े रहते थे, पर कभी किसीको दंश नहीं करते थे।

गोविन्द स्वामी और मौनी स्वामी उस समयके महान् समर्थ सत्पुरुष थे। मौनी स्वामीकी श्रीमहाराजपर बड़ी कृपा थी। महाराज सकुटुम्ब उत्तरकी ओर चले। गंगाखेडमें धर्मपत्नीका देहान्त हुआ। महाराज ऋणत्रयसे मुक्त हो गये। तेरहवें दिन श्रीदत्तने गोविन्द स्वामीके स्वरूपसे महाराजको प्रेषोच्चारपूर्वक संन्यास-दीक्षा दी और उनका नाम वासुदेवानन्द सरस्वती रखा तथा दण्ड

लेनेके लिये उज्जैनमें श्रीनारायणानन्द सरस्वतीके पास जानेकी आज्ञा की। महाराजने उज्जैन जाकर दण्ड ग्रहण किया और प्रथम चातुर्मास्य वहीं बिताया। इसके बाद आसेतु-हिमाचल पैदल यात्रा की। कभी छाता, जूता और किसी प्रकारका वाहन नहीं स्वीकार किया। क्षौर-जैसे कर्मके अतिरिक्त कभी अपनेको शूद्रस्पर्श नहीं होने दिया। छाता, कौपीन, कमण्डलुके सिवा और कोई संग्रह नहीं किया। भिक्षाको छोड़ और कोई अन्न ग्रहण नहीं किया, पैसेको तो हाथसे छूआतक नहीं।

इनके जीवनमें अनेक चमत्कार हुए हैं। उदाहरणार्थ एक बार गरमीके दिनोंमें ये चिदम्बरम् क्षेत्रमें थे, जहाँ पिनाकिनी नदीका जल इन दिनोंमें सूखकर पाँव-बराबर ही रह जाता है। महाराजका यह नियम था कि क्षौर करानेके बाद नदीमें गोता लगाकर ही नहाते थे। यहाँ बड़ी मुश्किल हुई। क्षौर हुआ, पाँव-बराबर जलमें महाराज खड़े हैं और सोच रहे हैं कि यहाँ गोता कैसे लगे। इतनेमें अकस्मात् नदीमें बाढ़-सी आयी और जल छाती-बराबर हो गया और गोता लगाकर स्नान करनेके नियमका खूब निर्वाह हुआ। उस समय उनके मुखसे कुछ श्लोक निकले थे, यथा—

याधिमासवशाच्चैत्र्यां कृतक्षौरस्य मेऽल्पका।
स्नापनाय क्षणाद् वृद्धा साध्वी सेव्या पिनाकिनी॥

सबसे बड़ा और नित्यका चमत्कार तो यह था कि भगवान् श्रीदत्तात्रेयसे ही इनकी रहस्यमय बातचीत हुआ करती थी।

जो कोई इनकी शरणमें आते उन्हें ये कर्म, भक्ति, ज्ञान और योग—इस मार्गचतुष्टयका उपदेश करते थे। हजारों लोग इनके समीप आकर तर गये। संवत् १९७१ में श्रीगरुडेश्वरस्थानमें महाराजने अपना शरीर विसर्जन किया। महाराजद्वारा रचित छोटे-बड़े संस्कृत और मराठीके मिलाकर उनतीस ग्रन्थ हैं, जो श्रीदत्तोपासकोंके समान सभीके लिये कल्याणमार्गके उत्तम पथप्रदर्शक हैं।

श्रीटेम्बे स्वामीके अन्तिम उपदेश

'मनुष्य-जीवनका प्रमुख हेतु मुक्तिका लाभ प्राप्त करना है। इस हेतुके लिये सर्वप्रथम मनको स्थिर करना होगा। इसी कारण वर्णाश्रमविहित धर्मका शास्त्रानुसार आचरण करना आवश्यक है। इस हेतुकी प्राप्तिके लिये वेदान्तोंका श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन नियमित रूपसे प्रतिदिन करना चाहिये। प्रमुखरूपसे श्रवणकी ओर अधिक लक्ष्य केन्द्रित करना चाहिये, ताकि मन आसक्तिमुक्त हो सके। सात्त्विक प्रवृत्तियोंके कारण ही मनुष्यकी उन्नति होती है। सात्त्विक प्रवृत्तिमें रत होनेके लिये तथा सात्त्विकता प्राप्त करनेके लिये प्रत्येक मनुष्यको आहारकी ओर लक्ष्य देना चाहिये। आहार हित, मित एवं मेध्य अर्थात् पवित्र हो, इसका ध्यान रखना चाहिये।

हमारी निजी प्रकृति सात्त्विक हुई या नहीं, इसकी कसौटियाँ इस प्रकार हैं—स्वधर्ममें दृढ़ श्रद्धा रखना, स्नान, सन्ध्या, देवपूजा, पंचमहायज्ञ आदि नियमित रूपसे करना, अतिथि-सत्कार, गोसेवा, कीर्तन-भजन, पुराणोंका श्रवण आदि करना, सभी मनुष्योंसे मीठी वाणी बोलना तथा अन्य व्यक्तिको हानि न हो—ऐसा व्यवहार करना, माता-पिताकी सेवा करना। स्त्रियोंको भी ससुरालमें रहकर सास-ससुर तथा वयस्कोंकी सेवा करना और दृढ़ श्रद्धासहित पतिकी सेवा करना इत्यादि। यदि इन सद्गुणोंको हम ग्रहण कर सकेंगे तो हमारी प्रकृति सात्त्विक होनेकी सम्भावना रहती है।

उदर-निर्वाहके हेतु हम भले ही व्यापार, खेती-बारी, नौकरी अथवा अन्य कोई उद्योग करते रहें, किंतु वेदविहित कर्म तथा गुरुकी आज्ञाका पालन करना कभी नहीं भूलना चाहिये।

सात्त्विक कर्म करनेसे हमारा अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तःकरण शुद्ध होनेपर उपासना स्थिर होती है। स्थिर उपासनाके फलस्वरूप मनको शान्ति प्राप्त होती है। मनःशान्तिके कारण आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है, जिसके द्वारा मोक्षलाभ होता है।'

स्वामीजीने इस प्रकार अत्यन्त सारगर्भित एवं अमृत-तुल्य उपदेश दिया। ज्ञानकी भूमिकाओंका विवरण करके उन्होंने सभी श्रोताओंसे भावपूर्ण वाणीमें निवेदन किया—

'मैंने आपको अत्यन्त संक्षेपमें सब कुछ कहा है। जो व्यक्ति तदनुसार आचरण करेगा, वह सचमुच पूर्ण सुखको प्राप्त करेगा।'

सरयूकी अवहेलना अक्षम्य

[श्रीभरतका बाण मारुतिको गिरानेमें क्यों सफल हुआ]

(आचार्य श्रीरामरंगजी)

ब्रह्मवेला में श्रीभरतजी सरयू-स्नानकर राजगुरु महर्षि वसिष्ठके आश्रममें नित्यकी भाँति पहुँच गये। रघुकुलके नरेशोंद्वारा प्रस्थापित की गयी परम्पराके अनुसार नियमित यज्ञमें भाग लिया। पूर्णाहुतिके पश्चात् महर्षि अपने आसनपर विराजमान हो गये। श्रीभरत भी उनके पास उठकर बैठ गये। रात्रिको घटी समस्त घटनासे गुरुदेवको अवगत कराते हुए उन्होंने बता दिया कि किस प्रकार मारुति द्रोणखण्ड लेकर आकाशमार्गसे जा रहे थे। लक्ष्मण वीरघातिनीके कारण मूर्च्छित थे; जनकनन्दिनीका हरण और लंकाके महारणकी समस्त कथा उन्होंने गुरुदेवको सुना दी।

गुरुदेव 'शिव-शिव' कहते हुए कुछ क्षण मौन रहकर बोले, 'वत्स! तुमने मारुतिपर शर-प्रहारकर लक्ष्मणके प्राण बचा लिये।'

'मैंने लक्ष्मणके प्राण बचा लिये, मैं तो ग्लानिमें गला जा रहा हूँ कि मैंने प्रभुके प्रियपर प्रहार करके जो पाप किया, उसका प्रायश्चित्त क्या है? यही जाननेकी इच्छा इस समय मेरे हृदयमें है और आप…'

'और हम यही कह रहे हैं कि तुमने लक्ष्मणके प्राण बचा लिये।'

'वह कैसे?'

'ऐसे कि यदि तुम मारुतिको उनके पातकके अपराधके लिये दण्डित नहीं करते तो वे उसके महाभारसे दबकर नन्दिग्रामको लाँघ ही नहीं पाते।'

'गुरुदेव! मारुतिने ऐसा कौन-सा घोर अपराध कर दिया था कि जिसके कारण…?'

'हाँ, सृष्टिके आरम्भिक क्षणोंमें समस्त सरिताओं सिन्धु और ब्रह्मपुत्र-जैसे नदोंसे भी प्रथम भारतवर्षकी पवित्र देवभूमिपर सर्वप्रथम पधारनेवाली सरवरराज मान (मानसरोवर)-की ज्येष्ठ दुहिता भगवती सरयूको प्रणाम किये बिना, उसे लाँघनेका प्रयत्न कर रहे थे।'

'किंतु गुरुदेव! क्षमा करें, सम्भव है कि मारुति देवी सरयूके महत्त्वसे परिचित न हों अथवा लक्ष्मणको जिस कठिन परिस्थितिमें छोड़कर आये थे, उन्हें बचानेके लिये वे शीघ्रतासे सूर्योदयसे पूर्व…।'

'नहीं-नहीं, वत्स! मारुति सरयूके महत्त्वसे परिचित न हों, यह हो ही नहीं सकता। वे सूर्यदेवके शिष्य त्रिभुवनके भूगोल-खगोलसे पूर्णतः परिचित हैं। उनके पाण्डित्यपर प्रश्नचिह्न अंकित करनेकी चेष्टा मत करो। रही चर्चा शीघ्रताकी, तो वह होनी ही चाहिये थी और थी, किंतु जब वे कालनेमिसे गुरुमन्त्रकी लीलामें उलझ सकते हैं, द्रोणगिरिके रक्षक एक-एक देवकी वैदिक मन्त्रोंसे स्तुति कर सकते हैं, औषधिके विषयमें विचार करनेकी अपेक्षासे पूर्ण शैलखण्ड ले चलनेका युक्तियुक्त विचार कर सकते हैं तो फिर भगवती सरयूको प्रणाम करनेका विचार क्यों नहीं आया?'

'किंतु गुरुदेव! मैं तो फिर भी यही कह सकता हूँ कि मारुतिके मनमें भगवती सरयूकी अवहेलना करनेका रंचमात्र भी विचार नहीं था।'

'यह सत्य है, यदि होता तो जैसा मैं पहले ही कह चुका हूँ कि वे तुम्हारे शरसे आहत होकर नन्दिग्रामकी धरतीसे उठ ही नहीं पाते, अपितु इसके साथ ही वे समस्त देवताओंसे प्राप्त दुर्लभ वरदानोंके फलसे भी वंचित हो जाते।'

'क्या?'

'हाँ, मारुति भगवान् आशुतोष शिवके अंशावतार हैं। पुत्रेष्टि-यज्ञसे प्राप्त क्षीरके जिस अंशसे तुम्हारी उत्पत्ति है, उसीके एक अंशसे मारुतिका भी प्रादुर्भाव हुआ है। पुत्रेष्टि-यज्ञसे प्रसादरूप चरुको जब महाराज दशरथ अपनी तीनों रानियोंको यथायोग्य वितरित कर रहे थे, तब तुम्हारी माता देवी कैकेयीके हाथसे उसका एक अंश छलककर ज्यों ही गिरनेको हुआ, त्यों ही भगवान् शंकरके आदेशसे पवनदेवने एक सुन्दर पक्षीके वेषमें उसे ग्रहणकर, सूर्याराधनमें तत्पर अंजनाकी अंजुलीमें गिरा दिया। उसे अंजनाने भी दिव्य प्रसाद मानकर ग्रहण कर लिया। वे सगर्भा हुईं, मारुतिका जन्म हुआ। इसी कारण पवनदेवका वात्सल्य उन्हें प्राप्त है। वे शंकरसुवन अर्थात्

भगवान् शंकरके अवतार, केसरीनन्दन अर्थात् वानरराज केसरीके औरस पुत्र और देवी अंजनीकी कुक्षिके रत्न हैं।

लौकिक लीलामें पालनेमें झूलते-झूलते ही उन्होंने भूखका प्रदर्शन करते हुए सूर्यदेवको पटल-दोलक (छींका)-पर रखा हुआ पिष्टक (पेड़ा) मानकर और उसी समय राहुको उन्हें सूतकग्रस्त करनेके लिये जाते हुए देखकर उसे अपना प्रतिद्वन्द्वी मानकर सूर्यसहित मुँहमें रख लिया। देवराज इन्द्रने दोनोंकी मुक्तिके लिये अपने अमोघ वज्रका प्रहार किया। जो केवल उनकी हनु (ठोड़ी) ही कुछ बाँकी कर पाया। इसी कारण आंजनेय हनुमान् नामसे प्रसिद्ध हैं। हाँ, वज्र-प्रहारके कारण वे मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़े। यह देखकर पवन-देवने क्रुद्ध होकर अपनी गति स्तम्भित कर दी। विश्वके प्राणोंपर संकट देखकर इन्द्र-वरुण-अग्नि आदि देवोंने ही नहीं बल्कि ब्रह्मा-विष्णु-महेशने भी प्रकट होकर उन्हें ब्रह्मपाश-सुदर्शन-त्रिशूल-वज्र-जल-अग्नि आदिके प्रकोपसे अभय रहनेके दुर्लभातिदुर्लभ वर प्रदान किये। भगवती सरयूकी जानबूझकर अवहेलना करनेपर वे सभी क्षणमात्रमें प्रभावहीन हो जाते। उन्होंने जिस स्थितिमें अपराध किया, उसी स्थितिमें तुमने शर-सन्धान उन राघवप्रियपर किया। जैसे वे रोगयुक्त हुए, वैसे ही रोगमुक्त हो गये। यह युक्तियुक्त समझकर अपने चित्तको ग्लानिमुक्त करो। उनके द्वारा प्रदान की गयी संजीवनीसे तो लक्ष्मणकी मूर्च्छासे निवृत्ति निश्चित रूपसे हो गयी होगी किंतु तुम्हारेद्वारा जो संजीवनी तुम्हारे बन्धुओंको मिली होगी, उसने उनमें न केवल अलौकिक ऊर्जाका ही संचार कर दिया होगा बल्कि निरन्तर करती ही रहेगी।'

'मुझ अकिंचनके द्वारा संजीवनी प्रदान की गयी, यह आप क्या कह रहे हैं!'

'हाँ, तुम्हारेद्वारा प्रदान की गयी संजीवनी, नहीं समझे। भरत! तुम मद-मुक्त हो, निश्छल-सरल हो। तुम्हारे मन-वचन-कर्ममें विरोध क्या विरोधाभासका भी अभाव है। सुनो, जब मारुतिने तुम्हारे अफर-शरसे आहत होकर गिरनेकी चर्चा रामसे की होगी तो रामका विश्वास और दृढ़ हो गया होगा कि मेरी अयोध्या पूर्णतः सुरक्षित है। आंजनेय-जैसा बलवीर भी उसे अर्धरात्रिके घोर अन्धकारमें भी लाँघ नहीं पाया तो फिर अन्यकी तो बात ही क्या? शत्रुघ्नको द्वारपर प्रत्यंचित चाप लिये जो देखा, उसे सुनकर तो सुरक्षितपर संरक्षितकी मुद्रा भी स्वतः लग जाती है। फिर परिवारकी मनःस्थिति, उनके सौहार्दपूर्ण संवाद, उर्मिलाकी आस्था, किस-किसने क्या-क्या प्रदान नहीं कर दिया होगा। युद्धभूमिमें संघर्षरत गम्भीर-से-गम्भीर वीरको भी परिवारकी चिन्ता तरल कर देती है। यद्यपि राम-लक्ष्मणके चित्तको कठिन-से-कठिन परिस्थिति भी विचलित नहीं कर सकती, किंतु तुमने उन्हें सुस्थिरता प्रदानकर अपनी भूमिकाका सटीक निर्वाह कर दिया। विचारो, बिना विचारे मारुति और तुमने क्या-क्या नहीं कर डाला। यदि विचारपूर्वक कहें तो तुम और मारुति क्या नहीं कर सकते।'

अस्तु, कुछ ठहरकर महर्षि पुनः बोले, 'प्रिय भरत! भगवती सरयूके एक और अलौकिक महत्त्वका रहस्य आज तुम्हारे समक्ष प्रकट कर रहा हूँ। बताओ, अयोध्याका श्मशानक्षेत्र गोप्रतार ही क्यों निश्चित किया गया?'

'गुरुदेव! आप ही कहें।'

'हाँ, प्रयाग तीर्थराज हैं। सूर्यपुत्री यमुना और ब्रह्मद्रवस्वरूपा सरितेश्वरी त्रिपथगा गंगाका वहाँ संगम है। उसे पवित्र मानकर अनेकों घोर पातकी वहाँ स्नान करने आते हैं। तीर्थराज अपने प्रभावसे उन्हें पातकमुक्त करते-करते स्वयं मलिन तन, विगलित वदन हो जाते हैं। उनके अंग-अंगमें दाह उत्पन्न हो जाता है। उनसे मुक्त होनेके लिये वे सरयूमें जहाँ स्नान करके प्रफुल्ल मन-वदन हो जाते हैं, वह अन्तशैया महाश्मशान गोप्रतार तीर्थ है। वहाँ जिसके शवका दहन हो जाता है, वह नित्य भगवद्धाममें निवास करनेका निर्विवाद अधिकारी बन जाता है।'

'गुरुदेव! आपके शब्द सुनकर मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि भगवती सरयूके महत्त्वको संसारके समक्ष प्रतिपादित करनेके लिये और साथ ही प्रभुके इस सामान्यसे सेवकके बाणको सम्मान देनेके लिये स्वयं आशुतोष शंकरने ही यह लीला रची।' 'प्रिय भरत! यही सत्य है।' 'देव! इस भरतको भी यही आशीर्वाद दीजिये कि उसे भी अन्तमें सरयू अम्बिकाके अंकमें स्थित गोप्रतारकी प्राप्ति हो' भरत गुरुदेवकी वन्दना करते हुए नन्दिग्रामकी ओर अग्रसर हो गये।

आनन्दरामायण—एक संक्षिप्त परिचय

(डॉ० श्रीबसन्तवल्लभजी भट्ट, एम०ए०, पी-एच०डी०)

श्रीआनन्दरामायणका प्रारम्भ निम्न मांगलिक श्लोकद्वारा भगवान् श्रीरामकी वन्दनासे होता है, जिसमें बताया गया है कि भगवान् श्रीराम सिंहासनपर आसीन

हैं, उनके बायें भागमें भगवती सीता, सामने श्रीहनुमान्‌जी, पीछे श्रीलक्ष्मणजी, दोनों पार्श्व भागोंमें श्रीशत्रुघ्नजी और श्रीभरतजी तथा वायव्य, ईशान, अग्नि एवं नैर्ऋत्यकोणमें क्रमशः श्रीसुग्रीवजी, श्रीविभीषणजी, तारापुत्र युवराज श्रीअंगदजी और श्रीजाम्बवान्‌जी स्थित हैं, इन सबके मध्यमें श्यामल आभासे सम्पन्न नीलकमलके समान कोमल कान्तिवाले भगवान् श्रीराम विराजमान हैं—

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पृष्ठे सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम्॥

महर्षि वाल्मीकिद्वारा श्रीरामकी वन्दनाके रूपमें गुम्फित यह श्लोक बड़े ही महत्त्वका है। 'रामदरबार' आदिके जो चित्र उपलब्ध होते हैं, वे इसी श्लोकके विवरणके आधारपर बने हुए हैं।

महर्षि वाल्मीकिजीके नामसे उनकी रचनाके रूपमें प्रसिद्ध 'आनन्दरामायण' श्रीरामकथाका एक अपूर्व ग्रन्थ है। यह भक्ति, उपासना, धर्माचरण, सदाचार और सत्कथाओंका आकर है। इसके मूल उपदेष्टा हैं परम वैष्णव भगवान् श्रीसदाशिव और श्रोता हैं जगज्जननी देवी पार्वती।

एक बारकी बात है, कैलासमें विराजमान भगवान् शंकरसे देवी पार्वतीने बड़े ही प्रसन्न मनसे पूछा—हे देव! आपने अनेक पुराणोंकी कथा मुझे सुनायी, अब कृपा करके मेरी प्रीति बढ़ानेवाले रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीके आनन्ददायक कर्म और उनके जन्म आदिकी मनोहर कथा सुनाइये। इसपर शिवजी बोले—हे कान्ते! तुमने श्रीरामचन्द्रका कथाविषयक बड़ा अच्छा प्रश्न किया है, मैं उस मंगलकारिणी कथाको विस्तारपूर्वक कहता हूँ, तुम ध्यानसे सुनो। तब भगवान् सदाशिवने पूरी आनन्दरामायणकी कथा उन्हें सुनायी और अन्तमें देवी पार्वतीसे कहा—हे देवि! रामके गुणोंका गान करनेवाली अनेक ग्रन्थरूपी मालाएँ हैं, उनमें यह आनन्दरामायण सुमेरुके समान विराजमान है। इसका श्रवण करनेसे सदा-सर्वदा मंगल होता है। यह भुक्ति तथा मुक्तिको देनेवाला है। इसके पठन-पाठनसे भगवान् श्रीरामकी विशेष भक्ति प्राप्त होती है। भगवान्‌की कृपा प्राप्त करनी हो तो आदरपूर्वक इसका पाठ करना चाहिये। हे शिवे! लोगोंको चाहिये कि इस पवित्र आनन्दरामायणका आदरपूर्वक श्रवण-कीर्तन किया करें; क्योंकि यह मंगलोंका भी मंगल देनेवाला है, इसी कारण मैं नित्य इसका आदरपूर्वक स्मरण करता हूँ और नित्य इसे नमन करता हूँ—

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं जप्यं पवित्रं श्रवणीयमादरात्।
यन्मङ्गलानामपि मङ्गलप्रदं स्मरामि नित्यं प्रणमामि सादरम्॥

(आ० रा० अन्तिम श्लोक)

मूलतः यह ग्रन्थ भगवान् श्रीराम और जगज्जननी सीताजीकी आराधनामें पर्यवसित है। शतकोटिप्रविस्तर रामायणोंकी परम्परामें इस रामायणका विशिष्ट स्थान है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अन्य रामायणोंमें जहाँ भगवान् श्रीरामके आविर्भावसे लेकर उनके राज्यारोहणतककी लीलाकथाओंका ही प्रायः गुणगान हुआ है, वहीं इस रामायणमें इस पूरी कथाको 'सारकाण्ड' नामक एक काण्डमें समाहितकर अवशिष्ट आठ काण्डोंमें भगवान्‌की अन्य नवीन लीलाकथाओं तथा उनकी दिव्य गुणावलीका बड़े ही सुन्दर तथा रोचक ढंगसे वर्णन हुआ है। इसकी कथाएँ अत्यन्त नवीन, मनको आह्लादित

करनेवाली तथा भक्तिको बढ़ानेवाली हैं। इसमें भगवान् श्रीरामकी ऐसी-ऐसी रोमांचक कथाएँ हैं, जिनका कहीं अन्यत्र वर्णन नहीं दीखता। भगवान् श्रीरामद्वारा भारतवर्षके सभी तीर्थोंकी यात्रा, अनेकानेक अश्वमेध यज्ञोंका सम्पादन, राम-लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न तथा लव-कुश आदिकी वंश-परम्पराका वर्णन, भगवान् श्रीरामकी दिग्विजय-गाथा, अनूठा भूगोल-वर्णन आदि इस ग्रन्थकी अनमोल निधि हैं। भगवान्की विविध स्तुतियाँ, मन्त्र, अनुष्ठान, अनेक प्रकारके रामलिंगतोभद्रोंकी रचना, रामाष्टोत्तरशतनाम, रामसहस्रनाम, रामस्तवराज, रामकवच, लक्ष्मणकवच, सीताकवच, शत्रुघ्न-भरतके कवच, हनुमत्कवच तथा रामनामकी महिमा इसमें विशेष रूपसे प्रतिपादित है। घर-घर पढ़ा जानेवाला श्रीरामरक्षास्तोत्र इसी ग्रन्थमें आया है। '**श्रीराम जय राम जय जय राम**' इस महामन्त्रको बतानेवाला श्लोक इस ग्रन्थमें कई बार आवृत्त हुआ है, जो इस प्रकार है—

श्रीशब्दपूर्वं जयशब्दमध्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम्।
त्रिसप्तकृत्वो रघुनाथनाम जपन्निहन्याद् द्विजकोटिहत्याः॥

(आ० रा० जन्म० ५। ४४)

सम्पूर्ण आनन्दरामायण नौ काण्डोंमें विभक्त है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) सारकाण्ड, (२) यात्राकाण्ड, (३) यागकाण्ड, (४) विलासकाण्ड, (५) जन्मकाण्ड, (६) विवाहकाण्ड, (७) राज्यकाण्ड, (८) मनोहरकाण्ड तथा (९) पूर्णकाण्ड।

काण्डोंके अन्तर्गत सर्ग हैं, सर्गोंके अन्तर्गत श्लोक हैं, पूरे आनन्दरामायणमें १०९ सर्ग और लगभग बारह हजार श्लोक हैं। नौओं काण्डोंमें क्या-क्या वर्णित है, इसे एक श्लोकमें इस प्रकार बताया गया है, इसे एकश्लोकी आनन्दरामायण भी कहा जाता है—

आदौ रावणमर्दनं द्विजगिरा तीर्थाटनं सीतया
साकेते दशवाजिमेधकरणं पत्न्या विलासाटनम्।
स्त्रीपुत्रग्रहणं स्नुषार्थमटनं पृथ्व्याश्च संरक्षणं
रामार्चादिनिरूपणं दयितया स्वीयं स्थलारोहणम्॥

(आ० रा० सार० १। २)

उपर्युक्त श्लोकके अनुसार विवरण इस प्रकार है—

(१) सारकाण्ड—आविर्भावसे लेकर रावण-वधतककी कथा—१३ सर्ग।

(२) यात्राकाण्ड—सीताके साथ विविध तीर्थोंकी यात्रा—९ सर्ग।

(३) यागकाण्ड—अयोध्यामें दस अश्वमेधयज्ञोंका सम्पादन—९ सर्ग।

(४) विलासकाण्ड—देवी सीताके साथ सम्पन्न माधुर्यमयी लीलाएँ—९ सर्ग।

(५) जन्मकाण्ड—लव-कुश आदिकी उत्पत्तिकी कथाएँ—९ सर्ग।

(६) विवाहकाण्ड—लव-कुश तथा उर्मिला, माण्डवी एवं श्रुतकीर्तिके पुत्रोंके विवाह-समारोहका वर्णन—९ सर्ग।

(७) राज्यकाण्ड—धर्मपूर्वक पृथ्वीका संरक्षण—२४ सर्ग।

(८) मनोहरकाण्ड—रामार्चासम्बन्धी विषयोंका प्रतिपादन—१८ सर्ग।

(९) पूर्णकाण्ड—सीतासहित भगवान्का स्वधाम-गमन—९ सर्ग।

इस रामायणमें भगवान् शिव तथा भगवान् श्रीरामका सर्वथा अभेद दिखलाया गया है। जगह-जगह भगवान् श्रीराम श्रीशिवकी स्तुति करते हैं और भगवान् शिव भगवान् रामकी। उनका अभेद दिखलाते हुए कहा गया है कि राम ही शिव हैं और शिव ही राम हैं, दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है, जो इनमें भेददृष्टि रखता है, वह नरक प्राप्त करता है—

राम एव हरो ज्ञेयः शिव एव रघूत्तमः।
उभयोर्नान्तरं ज्ञेयं भेददृङ् नारकी भवेत्॥

(आ० रा० मनो० ७। १०५)

आनन्दरामायणमें बताया गया है कि भगवान् श्रीरामने इस पृथ्वीतलपर ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष, ग्यारह महीना, ग्यारह दिन, ग्यारह नाडी तथा ग्यारह पलतक राज्य किया और चैत्र कृष्णपक्षकी पंचमी तिथिको वे अपने साकेत धामको पधारे। उस समय सभी देवता तथा महर्षि वाल्मीकि आदि ऋषि-मुनि वहाँ उपस्थित थे। भगवान्ने चतुर्भुजरूप धारण किया था और वे गरुडपर आसीन थे।

भगवान्के साथ ही सभी अयोध्यावासी भी दिव्यरूप धारणकर सान्तानिक लोकको गये—'**अयोध्यावासिनः सर्वे ययुः सान्तानिकं पदम्।**' (आ० रा० पूर्ण० ६। ५१) भगवान् के स्वधामगमनसे पूर्व ऋषि-महर्षियोंने वेदकी

ऋचाओंसे भगवान्‌की स्तुति की। सभी देवताओंने उनकी स्तुति की। उस समय भगवान् शिवने श्रीरामजीकी जो शतनाममयी स्तुति की, वह अत्यन्त ही भक्तिभावसे परिपूर्ण, ललित एवं गेय है, उस स्तुतिका प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है—

राघवं करुणाकरं भवनाशनं दुरितापहं
माधवं खगगामिनं जलरूपिणं परमेश्वरम्।
पालकं जनतारकं भवहारकं रिपुमारकं
त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥
भूधवं वनमालिनं घनरूपिणं धरणीधरं
श्रीहरिं त्रिगुणात्मकं तुलसीधवं मधुरस्वरम्।
श्रीकरं शरणप्रदं मधुमारकं व्रजपालकं
त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥

(आ० रा० पूर्ण० ६। ३२-३३)

भारतीय इतिहासकी सुदीर्घ परम्परामें अनेक राजर्षि हुए, उन्होंने दीर्घकालतक पृथ्वीमें धर्मपूर्वक एकच्छत्र राज्य भी किया, किंतु दुहाई तो केवल रामराज्यकी ही दी जाती है और जयकार भी रामजीकी ही होती है, सदा ही यही बोला जाता है—**राजा रामकी जै।** रामराज्य कैसा था, इसके विषयमें आनन्दरामायणमें विस्तारसे आया है, संक्षेपमें कुछ निदर्शन प्रस्तुत है—

रामराज्ये सदानन्दः सर्वानासीज्जनान् भुवि।
नासीत्कुत्रापि कलहश्चौर्यं निन्दाभयं तथा॥
राज्यमासीदसापत्नं समृद्धबलवाहनम्।
ऋषिभिर्हृष्टपुष्टैश्च रम्यं हाटकभूषणैः॥
सुदेशं सुप्रजं सुस्थं सुतृणं बहुगोधनम्।
देवतायतनानां च राजिभिः परिराजितम्॥
धर्मेण राजा धर्मज्ञः सीतारामः प्रतापवान्।
चकार राज्यं निर्द्वन्द्वमयोध्यायां सुनिश्चलम्॥

(आ० रा० राज्य० सर्ग १५)

रामराज्यकी एक झाँकी यहाँ निदर्शनके रूपमें प्रस्तुत है—

एक दिनकी बात है सीतामाताने रामजीसे कहा—मेरी यह इच्छा है कि आज मैं महलकी छतपर बैठकर बाजारका कौतुक देखूँ। माताकी ऐसी इच्छा देखकर रामजी मुसकरा उठे और वे सीताके साथ महलकी छतपर उस स्थानपर जाकर बैठ गये, जहाँसे सारा राजमार्ग तथा बाजारका दृश्य साफ-साफ दिखायी देता था। राजमार्गपर जनसमुदाय इधर-उधर भ्रमण कर रहा था। सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर-सुन्दर वस्त्रोंसे तथा अलंकारोंसे विभूषित थे। उनके मुखमण्डलपर प्रसन्नताका भाव दिखायी दे रहा था। इसी बीच सीतामाताने देखा कि एक स्त्री दीन-हीन मलिन वेषमें इधर-उधर घूम रही है, उसकी गोदमें एक नन्हा शिशु भी है, उसके शरीरपर पूरे वस्त्र भी नहीं हैं, आभूषणोंकी तो बात ही क्या? उसको देखनेसे लग रहा था कि वह शायद भिक्षा माँगने बाजारमें आयी है।

उसकी यह दशा देख माताका हृदय अत्यन्त दुखी हो गया कि रामराज्यमें यह कैसी विडम्बना! करुणासिक्त माता सीताने तुरंत दासीको भेजकर उसे अपने पास बुलवाया और पूछा कि तुम्हारी ऐसी अवस्था कैसे हो गयी? तब उसने बताया कि मेरा इस संसारमें कोई नहीं है, मेरे पास भरण-पोषणके लिये अन्न भी नहीं है, फिर वस्त्र-आभूषणकी तो बात ही क्या है? यह सुनकर माताका हृदय अत्यन्त द्रवीभूत हो गया, उन्होंने श्रीरामकी ओर देखा और अपने सभी आभूषण आदि उतारकर उसे दे दिये और कहा—देवि! तुम दुखी न होओ, तुम इसी समय लक्ष्मणके पास चली जाओ और उनसे एक लाख स्वर्णमुद्रा ले लो। बहुत अच्छा कहकर वह लक्ष्मणके पास गयी और सीताजीकी आज्ञा सुनायी। लक्ष्मणजीने जानकीजीके कथनानुसार एक लाख स्वर्णमुद्रा उसे दे दी। प्रसन्नमन होकर वह वापस चली गयी।

तदनन्तर सीतामाताने लक्ष्मणके माध्यमसे यह घोषणा करवा दी कि 'आजसे सम्पूर्ण रामराज्यमें कोई भी स्त्री-पुरुष ऐसा न दिखायी दे, जो सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जित न हो, यदि कहीं भी, किसी देशमें, किसी राज्यमें कोई वस्त्राभूषणविहीन देखा जायगा तो उस देशका राजा दण्डका भागी बनेगा। मेरे गुप्तचर घूम-घूमकर सर्वत्र देखते रहेंगे। अतः राजाओंको चाहिये कि वे अपने खजानेके द्रव्यसे उत्तम वस्त्राभूषण तैयारकर प्रजामें बँटवा दें।' माताकी आज्ञाका पालन हुआ और तबसे प्रजामें किसी प्रकारका कोई अभाव नहीं रहा, सभी सुखी हो गये—

तदारभ्य जगत्यां न कश्चिद्विगतभूषणः।
नारी वा पुरुषो वासीत् कुत्राप्यवनिजाभयात्॥

(आ० रा० विला० ६। ३६)

श्रीराम-मन्त्रका मूल

[श्रीराम जय राम जय जय राम]

(पूज्य स्वामी श्रीशिवानन्दजी)

लंका-विजयके उपरान्त अयोध्यामें एक बार भगवान् श्रीराम अपने राज-दरबारमें विराजमान थे। उस समय राजा श्रीरामको कुछ आवश्यक परामर्श देनेके लिये देवर्षि नारद, विश्वामित्र, वसिष्ठ और अन्य अनेक ऋषिगण पधारे हुए थे।

जबकि एक धार्मिक विषयपर विचार-विनिमय चल रहा था, देवर्षि नारदने कहा—'सभी उपस्थित ऋषियोंसे एक प्रार्थना है। आपलोग अपने-अपने विचारसे यह बतायें कि 'नाम' (भगवान्‌का नाम) और 'नामी' (स्वयं भगवान्)-में कौन श्रेष्ठ है?' इस विषयपर बड़ा वाद-विवाद हुआ; किंतु राज-सभामें उपस्थित ऋषिगण किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सके। अन्तमें देवर्षि नारदने अपना अन्तिम निर्णय दे दिया—'निश्चय ही नामीसे नाम श्रेष्ठ है और राज-सभाके विसर्जन होनेके पूर्व ही प्रत्यक्ष उदाहरणके द्वारा इसकी सत्यता प्रमाणित कर दी जा सकती है।'

तदनन्तर नारदजीने हनुमान्‌जीको अपने पास बुलाया और कहा—'महावीर! जब तुम सामान्य रीतिसे सभी ऋषियोंको और श्रीरामको प्रणाम करो, तब विश्वामित्रको प्रणाम मत करना। वे राजर्षि हैं; अतः वे समान व्यवहार और समान सम्मानके योग्य नहीं हैं।' हनुमान्‌जी सहमत हो गये। जब प्रणामका समय आया, हनुमान्‌जीने सभी ऋषियोंके सामने जाकर सबको साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम किया; केवल मुनि विश्वामित्रको नहीं किया। मुनि विश्वामित्रजीका मन कुछ क्षुब्ध हो उठा।

तब नारदजी विश्वामित्र मुनिके पास गये और बोले—'महामुने! हनुमान्‌की धृष्टता तो देखो। भरी राज-सभामें आपके अतिरिक्त उसने सभीको प्रणाम किया। उसे आप अवश्य दण्ड दें। आप ही देखिये, वह कितना उद्दण्ड और घमण्डी है?'

बस, इतनेपर तो विश्वामित्र मुनि आगबबूला हो गये। वे राजा रामके पास गये और बोले—'राजन्! तुम्हारे सेवक हनुमान्‌ने इन सभी महान् ऋषियोंके बीचमें मेरा घोर अपमान किया है। अतः कल सूर्यास्तके पूर्व उसे तुम्हारे हाथों मृत्युदण्ड मिलना चाहिये।' विश्वामित्र रामके गुरु थे। अतः राजा रामको उनकी आज्ञाका पालन करना था। उसी समय भगवान् राम निश्चेष्ट-से हो गये, इसलिये कि उनको अपने हाथों अपने परम अनन्य स्वामिभक्त सेवकको मृत्युदण्ड देना होगा। 'श्रीरामके हाथों हनुमान्‌को मृत्युदण्ड मिलेगा'—यह समाचार बात-की-बातमें सारे नगरमें फैल गया।

हनुमान्‌जीको भी बड़ा ही खेद हुआ। वे नारदजीके पास गये और बोले—'देवर्षि! मेरी रक्षा करो। भगवान् श्रीराम कल मेरा वध कर डालेंगे। मैंने आपके परामर्शके अनुसार ही कार्य किया। अब मुझे क्या करना चाहिये?' नारदजीने कहा—'ओ हनुमान्! निराश मत होओ। जैसा मैं कहता हूँ, वैसा करो। ब्राह्ममुहूर्तमें बड़े सबेरे उठ जाओ। सरयूमें स्नान करो। फिर सरिताके बालुका-तटपर खड़े हो जाओ और हाथ जोड़कर '**श्रीराम जय राम जय जय राम**'—मन्त्रका जप करो। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तुमको कुछ नहीं होगा।'

दूसरे दिन प्रभात हुआ। सूर्योदयके पहले ही हनुमान्‌जी सरयूतटपर गये, स्नान किया और जिस प्रकारसे देवर्षि नारदने कहा था, तदनुसार हाथ जोड़कर भगवान्‌के उपर्युक्त नामका जप करने लगे। प्रातःकाल हनुमान्‌जीकी कठिन परीक्षा देखनेके लिये नागरिकोंकी भीड़-की-भीड़ इकट्ठी हो गयी। भगवान् श्रीराम हनुमान्‌जीसे बहुत दूर खड़े हो गये, अपने परम सेवकको करुणार्द्र

दृष्टिसे देखने लगे और अनिच्छापूर्वक हनुमान्‌पर बाणोंकी वर्षा करने लगे, परंतु उनका एक भी बाण हनुमान्‌को वेध नहीं सका, सम्पूर्ण दिवस बाण-वर्षा होते रहनेपर भी हनुमान्‌जीपर कोई प्रभाव नहीं हुआ। भगवान्‌ने ऐसे शस्त्रोंका भी प्रयोग किया, जिनसे वे लंकाकी रणभूमिमें कुम्भकर्ण तथा अन्यान्य भयंकर राक्षसोंका वध कर चुके थे। अन्तमें भगवान् श्रीरामने अमोघ 'ब्रह्मास्त्र' उठाया। हनुमान्‌जी भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण किये हुए पूर्ण भावके साथ मन्त्रका जोर-जोरसे उच्चारण करके जप कर रहे थे। वे भगवान् रामकी ओर मुसकराते हुए देखते रहे और वैसे ही खड़े रहे। सब आश्चर्यमें डूब गये और हनुमान्‌की 'जय जय' का घोष करने लगे।

ऐसी स्थितिमें नारदजी विश्वामित्र मुनिके पास गये और बोले—'हे मुनि! अब आप अपने क्रोधका संवरण करें। श्रीराम थक चुके हैं। विभिन्न प्रकारके बाण हनुमान्‌का कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। यदि हनुमान्‌ने आपको प्रणाम नहीं किया, तो इसमें है ही क्या? अब इस संघर्षसे श्रीरामकी रक्षा कीजिये और इस प्रयाससे उन्हें परावृत्त कीजिये। अब आपने श्रीरामके नामकी महत्ताको समझ-देख ही लिया है।' इन शब्दोंसे विश्वामित्र मुनि प्रभावित हो गये और 'ब्रह्मास्त्रद्वारा हनुमान्‌को नहीं मारें'—ऐसा श्रीरामको आदेश दिया। हनुमान्‌जी आये और अपने स्वामी श्रीरामके चरणोंपर गिर पड़े एवं विश्वामित्र मुनिको भी उनकी दयालुताके लिये प्रणाम किया। विश्वामित्र मुनिने बहुत प्रसन्न होकर हनुमान्‌जीको आशीर्वाद दिया। उन्होंने श्रीरामके प्रति हनुमान्‌की अनन्य भक्तिकी बड़ी सराहना की।

जब हनुमान्‌जी संकटमें थे, तभी सर्वप्रथम यह मन्त्र नारदजीने हनुमान्‌को दिया था। अतः हे प्रिय साधकगण! जो भवाग्निसे दग्ध हैं, उन्हें अपनी विमुक्तिके लिये इस मन्त्रका जप करना चाहिये।

'श्रीराम'—यह सम्बोधन, भगवान् रामके प्रति पुकार है। 'जय राम'—यह उनकी स्तुति है। 'जय जय राम'— यह उनके प्रति पूर्ण समर्पण है। मन्त्रका जप करते समय मनमें यही भाव होना चाहिये कि 'हे राम! मैं आपकी स्तुति करता हूँ। मैं आपकी शरण हूँ।' आपको तुरंत ही भगवान् रामके दर्शन मिलेंगे।

समर्थ स्वामी रामदासजीने इस मन्त्रका तेरह करोड़ जप किया और भगवान् श्रीरामके प्रत्यक्ष दर्शनका लाभ उठाया। राम-नामकी अचिन्त्य शक्तिका प्रभाव अमित है। आप राम-नामका गुणगान करें। आप मन्त्रका जप कर सकते हैं और सुस्वरमें उसको गा भी सकते हैं। इस मन्त्रमें तेरह अक्षर हैं और तेरह लाख जपका पुरश्चरण माना गया है।

उपर्युक्त १३ अक्षरके सिद्ध मन्त्रका तुम जप क्यों नहीं करते? और इससे जिस प्रकार अनेकानेक भक्तोंको भगवान्‌की प्राप्ति हुई है, उसी प्रकार भगवान्‌की प्राप्ति क्यों नहीं कर लेते?

यह नाम तुम्हारे जीवनका सहारा बने, यह नाम तुम्हारी रक्षा करे, तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करे और लक्ष्यकी प्राप्ति करा दे। पूर्ण श्रद्धा-भक्तिके सहित भगवान्‌के नामका अखण्ड जप करनेसे तुम्हें इसी जन्ममें प्रभुका साक्षात्कार हो जाय, यही मेरा आशीर्वाद है।

भक्तका किसीसे राग-द्वेष नहीं होता

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

एक कन्हैया नामके भक्त थे। वे अपनेको भगवान् कन्हैयाका गुमाश्ता मानते थे। एक दिन उनके घरपर डाकू आये और उनसे पूछा कि 'कन्हैया कहाँ है?' उसने कहा—'क्या काम है? आपको क्या चाहिये? मैं कन्हैयाका गुमाश्ता हूँ।' डाकुओंने कहा—'हम तो डाकू हैं, धन चाहिये।' कन्हैयाके भक्तने तिजोरीकी चाभी उनको दे दी और कहा—'जितना चाहिये ले जाओ। आपका ही तो है।' डाकू उससे चाभी लेकर साठ हजार रुपये निकालकर ले गये। प्रात:काल होनेपर पुलिसने पूछा कि 'क्या रातमें तुम्हारे घरपर डाका पड़ा था?' तो उसने कहा, 'डाका नहीं पड़ा। कन्हैया आया था, उसको जितने रुपयोंकी जरूरत थी, ले गया।'

इससे साधकको यह भाव लेना चाहिये कि जो कुछ है, सब मेरे प्रियतम प्रभुका है। इसीलिये सब मेरे हैं, कोई पराया नहीं है। सबका लक्ष्य एक हो सकता है, परंतु मान्यता और साधना एक नहीं होती; क्योंकि रुचि और योग्यतामें भेद होता है। अत: साधकको किसीसे यह नहीं कहना चाहिये कि तुम गलतीपर हो, तुम्हारे सोनेमें खोट मिला हुआ है। उसे सोना कसनेकी कसौटी दे देनी चाहिये। विपक्षीकी विजयपर हर्ष मानना चाहिये और पराजयपर दु:ख मानना चाहिये। जो द्वेष रखता हो, उसके साथ भलाई करनी चाहिये।

एक कठजीभा नामके स्वामी थे। एक पण्डितके साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थमें पण्डित हार गया और उस दु:खसे दुखी होकर गंगामें डूब गया। उस दिनसे स्वामीजीने शास्त्रार्थ करना छोड़ दिया। उनको इतना दु:ख हुआ कि अपनी जीभको उन्होंने काठमें बन्द कर लिया। उसीसे उनका नाम कठजीभा (काष्ठजिह्वा) पड़ गया।

किसीका मरना, दुखी या अपमानित होना और हारना यदि प्रिय मालूम होता हो तो समझना चाहिये कि चित्त अशुद्ध है। अपने सुख और दु:खमें यदि समता न रह सके तो समझना चाहिये कि चित्त अशुद्ध है। विवादमें किसीपर विजय पाना हो तो अपना पक्ष स्थापित न करे, दूसरे पक्षपर बार-बार सन्देह करता रहे। पर यह साधकके लिये बढ़िया बात नहीं है।

जिसके चित्तमें राग नहीं रहता, उसका जीवन त्यागसे भरपूर हो जाता है। जिसके चित्तमें द्वेष नहीं रहता, उसका हृदय प्रेमसे भर जाता है। जहाँ त्याग होता है, वहाँ मुक्ति आ जाती है और जहाँ प्रेम होता है, उसके जीवनमें भक्ति आ जाती है।

शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदिसे और घरसे सम्बन्ध तोड़ देनेपर प्रभुसे सम्बन्ध जुड़ जाता है।

निर्बलताका समूह ही संगठन है, संगठन तोड़नेसे सच्ची एकता होती है। संगठनसे भलाई और बुराई दोनों ही होती हैं। अत: साधकको चाहिये कि सबके साथ प्यारकी एकता करे, संगठन न करे अर्थात् दलबन्दी न करे।

मतभेद होना स्वाभाविक है। पर इसको लेकर ईश्वरवादी किसीसे भी वैर नहीं कर सकता; क्योंकि सब प्रभुके हैं। तब वह किससे वैर करे, कैसे किसीका बिगाड़ करे और किसीको बुरा समझे।

प्रेम होनेपर ही प्रेमकी दृष्टिसे सबमें प्रियतमका दर्शन होता है। अत: साधकको चाहिये कि इन्द्रियोंकी दृष्टिसे अर्थात् राग-द्वेषकी दृष्टिसे ऊपर उठकर सबको प्रीतिकी दृष्टिसे देखे।

जिस भावनाके मूलमें दार्शनिकता नहीं होती, वह ठहर नहीं सकती। अत: साधकको समझना चाहिये कि जो कुछ है, सब उनका है, वे मेरे हैं, वे इस सम्पूर्णमें और इससे परे भी हैं। ऐसा जान लेनेपर चित्त सर्वथा शुद्ध होकर असीम प्रेमसे भर जाता है।

गोमाताकी आधिदैविक शक्ति

(गोलोकवासी पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

ईश्वरीय ज्ञानको प्रकट करनेवाली शब्दराशिको वेद कहते हैं। जैसे ईश्वर नित्य है, उसी तरह उसके नित्य-ज्ञानके प्रतिपादक शब्दराशि-रूप वेद भी नित्य हैं। उस वेदमें कोई पुरुष दखल नहीं दे सकता, इसलिये वेद अपौरुषेय है। इस वेदने गौको पूज्य माना है और यह भी बताया है कि गौकी पूजा करनेसे ऐहिक और आमुष्मिक अभ्युदय प्राप्त होता है।

प्रश्न उठता है कि गौ तो प्रत्यक्ष ही पशु है। मनुष्य पशुके स्तरसे ऊपर उठा हुआ प्राणी है, फिर मनुष्य पशुकी पूजा क्यों करता है? आखिर गौमें मनुष्यसे क्या अच्छाई है, जिससे मनुष्य इसके सामने झुके? सच तो यह है कि गौमें मनुष्यकी अपेक्षा ज्ञानकी कमी, धर्मका अभाव और खान-पान भी विचित्र ही है।

यह प्रश्न उस व्यक्तिके लिये हौआ बन जाता है, जो वेदकी अपौरुषेयता और अज्ञातार्थ-ज्ञापकतासे अपरिचित है। प्रत्यक्ष और अनुमानसे जो तथ्य हम नहीं जान पाते, उस तथ्यको बतलाना ही वेदका वेदत्व है। वेद पूज्यवर्गमें दैवीशक्तिकी धाराका संचार मानता है। वह पूज्यवर्ग उस दैवी धारासे भले ही स्वयं प्रकाशित न हो, किंतु पूजनसे सम्बद्ध अपने पूजकको प्रकाशित कर ही देता है। जैसे बिजलीके तारमें विद्युत्की धाराएँ प्रवाहित होती रहती हैं, इन धाराओंसे वह भले ही स्वयं प्रकाशित न होता हो लेकिन अपनेसे सम्बद्ध बल्बको प्रकाशित कर ही देता है। इसी तरह वेदका सिद्धान्त है कि पूज्य अपने कर्तव्यसे मरकर भले नरकमें जाय, किंतु अपने पूजकका कल्याण कर ही देता है।

तैत्तिरीय ब्राह्मणमें एक आख्यायिका आती है—'एक बार ब्रह्माजीने अचेतन जगत्की सृष्टि कर दी थी। इसके बाद वे चाहते थे कि जीवात्मासे युक्त चेतन-वस्तु उत्पन्न हो, इसी कामनासे उन्होंने होम किया। उस होमसे अग्नि, वायु और आदित्य-रूप तीन चेतन-देवता उत्पन्न हुए। इन तीनों देवताओंने भी चेतन-जगत्के विस्तारके लिये होम किया। उन तीनोंके होम करनेके बाद गौ उत्पन्न हुई—'**तेषाᳫं हुतादजायत गौरेव।**' (तैत्तिरीय ब्राह्मण २।१।६)। उसे देखकर तीनों देवताओंने उसे अपनाना चाहा। प्रत्येकका कहना था कि मेरे होमसे यह गौ उत्पन्न हुई है, इसलिये यह मेरी है। निर्णयके लिये तीनों देवता ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने उनसे पूछा कि आप तीनोंमेंसे किसने किस देवताको आहुति दी? अग्निदेवताने बताया कि मैंने प्राणदेवताके लिये आहुति दी। वायुदेवताने शरीराभिमानी देवताको और आदित्यने नेत्राभिमानी देवताको आहुति देनेकी बात कही। तब प्रजापतिने निर्णय लिया कि शरीर और चक्षु—ये दोनों प्राणके अधीन हैं; इनमें प्राण ही मुख्य है, इसलिये प्राणदेवताके होमसे ही गौ उत्पन्न हुई और वह गौ अग्निको समर्पित कर दी गयी। तभीसे गौका नाम 'अग्निहोत्र' पड़ गया। '**गौर्वा अग्निहोत्रम्।**' (तैत्ति० ब्राह्मण ३।१।६)

इसके बाद इसी श्रुतिने बताया है कि इस अग्निहोत्री धेनुकी जो पूजा करता है, वह इस लोकमें अभ्युदय तो प्राप्त करता ही है, मरनेके बाद उसे स्वर्ग मिलता है—'**तृप्यति प्रजया पशुभिः। प्र सुवर्गं लोकं जानाति। पश्यति पुत्रम्। पश्यति पौत्रम्।**' (३।१।८) '**देहपातादूर्ध्वं स्वर्गं प्रजानाति। ततः पूर्वं दीर्घायुष्येण युक्तः पुत्रं पौत्रं च पश्यति।**' (सायणभाष्य)

वेदके इस प्रमाणसे स्पष्ट हो जाता है कि पूज्यवर्गमें जो दैवीशक्तिकी धारा बहती रहती है, उससे पूजक तो प्रकाशित हो ही जाता है, किंतु अनास्थारूपी तिमिररोग लग जानेसे अपौरुषेय वेदके इस पुनीत प्रकाशको मनुष्य देख नहीं पाता। प्रत्यक्ष घटनासे इस रोगकी चिकित्सा हो जाती है और फिर आँखें स्वस्थ होकर उस पुनीत प्रकाशको देख पाती हैं। इसलिये इस सम्बन्धमें एक सत्य घटना प्रस्तुत की जा रही है—

कुआँ बनानेवाला एक मजदूर अपनी पत्नीके साथ आम रास्तेपर एक कुआँ खोद रहा था। उसकी पत्नी

मिट्टी फेंकनेका काम करती थी और मजदूर कुआँ खोदनेका। शामको घर लौटनेके पहले वे छोटी नदीके निकट नित्यक्रिया सम्पन्नकर घर लौट जाते थे। नदी छोटी थी। उस दिन उसमें अचानक पानी बढ़ गया। अँधेरा बढ़ता जा रहा था। उसे सुनायी पड़ा कि कोई प्राणी जोर-जोर से साँस खींच रहा है। नजदीक जानेपर एक गौको उसने कीचड़में फँसी हुई पाया। वह जल पीने आयी होगी, उसका पाँव दलदलमें फँस गया और इसी बीचमें पानीका बढ़ाव हो गया। पानी उसके थुँथनेतक पहुँच चुका था। थोड़ा पानी और बढ़ता तो वह डूब जाती। गायकी यह दुर्दशा उससे देखी नहीं गयी। गाँवसे लोगोंको बुलाकर उसने उसका उद्धार किया। इसके कुछ दिनोंके बाद जब वह कुआँ खोद रहा था, कुआँ भहरा गया और वह करोड़ों मन मिट्टीसे दब गया किंतु उसने देखा कि उसके सिरपर वही गाय खड़ी है, जिसे उसने डूबनेसे बचाया था। मिट्टीका बहुत बड़ा बोझ गायके पीठपर था और उसके नीचे वह अपनेको सुरक्षित अनुभव कर रहा था। गायके इशारेसे उसने उसका दूध पीया और उसीके इशारेसे वह एक खोहमें घुसता हुआ दूसरे कुएँमें निकल गया। वहाँ वह आवाज देने लगा कि हमको कोई निकालो। लोगोंने उसे निकाल दिया।

इस घटनासे स्पष्ट हो जाता है कि जिस गौको उस मजदूरने बचाया था, वह अपने मालिकके यहाँ भूसा खा रही थी, दूध दे रही थी, उसको इस तथ्यका ज्ञान भी न था कि मैं किसीको बचा रही हूँ, किंतु वेदसे प्रतिपादित गौकी आधिदैविक शक्तिने गोरूपमें परिणत होकर मजदूरको बचा लिया। तैत्तिरीय श्रुतिके उदाहरणमें यह एक प्रत्यक्ष घटना है, जिसमें बतलाया गया है कि गौकी आधिदैविक शक्ति उसे गोलोकतक पहुँचा देती है।

इसी प्रकारकी एक अन्य घटना ब्रिटिश शासनकालकी है; एक मुसलमान बलवाई सरदारने १८५७ ई० के गदरके दौरान अपने साथियोंसे एक गर्भवती गायकी रक्षा की थी। बादमें अन्य बलवाइयोंके साथ वह भी पकड़ा गया और अंग्रेज सरकारद्वारा उसे फाँसीकी सजा दी गयी। निश्चित तिथिपर उसे फाँसीके तख्तेपर चढ़ाया गया, गलेमें फन्दा डाला गया; जल्लादने रस्सी खींची और तख्ता हट गया, ऐसेमें फन्देको उसका गला दबाकर मार देना चाहिये था, पर ऐसा न हो सका; क्योंकि पैरोंके नीचे गोमाताकी दो सींगें अवलम्बके रूपमें आ गयीं।

उस बलवाईको तीन बार फाँसी दी गयी, पर तीनों बार गोमाताने अपनी सींगोंका अवलम्बन देकर उसकी रक्षा कर ली।

अब विचारकी बात है कि कुएँके अन्दर या फाँसीके तख्तेके नीचे गाय कहाँसे आ सकती है? वास्तवमें यह गोमाताकी आधिदैविक शक्ति ही है, जिसने उन लोगोंकी रक्षा की थी।

संवत्सरका प्रथम मास—चैत्रमास

चैत्रमास संवत्सरका प्रथम मास है। सृष्टिके आरम्भमें चन्द्रमा चित्रा नक्षत्रपर था। इसी कारण यह चैत्रमास कहलाता है। अन्य महीनोंकी अपेक्षा चैत्र पहला महीना माना गया है और वैशाख आदि महीने इसके पीछे आते हैं। इस मासका इसलिये भी वैशिष्ट्य है कि इसी मासमें ब्रह्माजीने सृष्टिकी रचना प्रारम्भ की थी—**'चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि। शुक्लपक्षे समग्रे तु तदा सूर्योदये सति॥'**

इस मासमें होनेवाले व्रत-पर्वोंका संक्षेपमें विवरण इस प्रकार है—

कृष्ण पक्ष

चैत्रमासके कृष्णपक्षमें कृष्ण प्रतिपदासे चैत्र शुक्ल द्वितीयातक गौरीव्रत किया जाता है। इसे विवाहिता और कुमारी दोनों करती हैं। कृष्ण प्रतिपदाको ही होलामहोत्सव या धुरंडी होती है। शास्त्रानुसार इसी दिन नवान्नेष्टि नामक यज्ञ भी होता है। इसी पक्षमें चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्थीको संकष्ट चतुर्थी व्रत किया जाता है। वर्तमान या भावी संकटकी निवृत्तिके लिये यह उत्तम व्रत है। इसी पक्षकी अष्टमी तिथिको शीतलाष्टमीका व्रत किया जाता है। इससे शीतला रोगजनित उपद्रवकी शान्ति होती है। इसमें एक दिन पहले बने पूआ-मिठाई आदिसे शीतला देवीको भोग लगाया जाता है तथा शीतलास्तोत्रका पाठ किया जाता है। इसी दिन संतानाष्टमीका भी व्रत होता है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण और देवकीका गन्धादिसे पूजन किया जाता है। इस पक्षकी एकादशीको पापमोचनी एकादशीका व्रत किया जाता है। इसी पक्षकी त्रयोदशीको वारुणी योग होता है, इस पुण्यप्रद महायोगमें गंगादि पवित्र नदियोंमें स्नान, दान और उपवासादिका बड़ा महत्त्व है। चैत्र कृष्ण चतुर्दशीको केदारदर्शन व्रत किया जाता है। इसमें गंगास्नानकर एकभुक्त व्रत किया जाता है। चैत्री अमावस्याको स्नान-दान आदिका बड़ा महत्त्व है, इस दिन सोम, भौम या गुरुवार हो तो इस व्रतसे सूर्यग्रहणके समान फल होता है।

शुक्ल पक्ष

नवसंवत्सर—जिस प्रकार रवि-सोम आदि सात वार, चैत्र-वैशाखादि बारह मास, अश्विनी-भरणी आदि सत्ताइस नक्षत्र, मेष-वृषादि बारह राशियाँ और वसन्त-ग्रीष्मादि संज्ञक छः ऋतुएँ होती हैं, उसी प्रकार प्रभव-विभव आदि साठ संवत्सर होते हैं। बीस-बीस संवत्सरोंकी ब्रह्म-विष्णु-रुद्रसंज्ञक तीन विंशतिकाएँ होती हैं। बृहस्पति अपनी मध्यम गतिसे जब एक राशिका भोग कर लेता है, तब एक संवत्सर पूर्ण हो जाता है अर्थात् बृहस्पति जब मध्यम मानसे राशि-परिवर्तन करता है, तभी संवत्सर परिवर्तित होता है—

बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात् संवत्सरं सांहितिका वदन्ति॥

चैत्रमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे नवसंवत्सरका आरम्भ होता है, यह अत्यन्त पवित्र तिथि है। इस तिथिको रेवती नक्षत्रमें, विष्कुम्भ योगमें दिनके समय भगवान्के आदि अवतार मत्स्यरूपका प्रादुर्भाव भी माना जाता है—

कृते च प्रभवे चैत्रे प्रतिपच्छुक्लपक्षगा।
रेवत्यां योगविष्कुम्भे दिवा द्वादशनाडिकाः॥
मत्स्यरूपकुमार्यां च अवतीर्णो हरिः स्वयम्।

(स्मृतिकौस्तुभ)

युगोंमें प्रथम सत्ययुगका प्रारम्भ भी इसी तिथिको हुआ था। यह तिथि ऐतिहासिक महत्त्वकी भी है, इसी दिन सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने शकोंपर विजय प्राप्त की थी और उसे चिरस्थायी बनानेके लिये विक्रम-संवत्का प्रारम्भ किया था।

इस दिन प्रातः नित्यकर्म करके तिलका उबटन लगाकर स्नान आदिसे शुद्ध एवं पवित्र होकर हाथमें गन्ध, अक्षत, पुष्प और जल लेकर देश-कालके उच्चारणके साथ यह संकल्प करना चाहिये—**'मम**

सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य स्वजनपरिजनसहितस्य वा आयुरारोग्यैश्वर्यादिसकलशुभफलोत्तरोत्तराभिवृद्ध्यर्थं ब्रह्मादिसंवत्सरदेवतानां पूजनमहं करिष्ये।'

—ऐसा संकल्पकर नयी बनी हुई चौरस चौकी या बालूकी वेदीपर स्वच्छ श्वेतवस्त्र बिछाकर उसपर हल्दी या केसरसे रँगे अक्षतसे अष्टदल कमल बनाकर उसपर ब्रह्माजीकी सुवर्णमूर्ति स्थापित करे। गणेशाम्बिका-पूजनके पश्चात् '**ॐ ब्रह्मणे नमः**' मन्त्रसे ब्रह्माजीका

आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करे।

पूजनके अनन्तर विघ्नोंके नाश और वर्षके कल्याणकारक तथा शुभ होनेके लिये ब्रह्माजीसे निम्न प्रार्थना की जाती है—

भगवंस्त्वत्प्रसादेन वर्षं क्षेममिहास्तु मे।
संवत्सरोपसर्गा मे विलयं यान्त्वशेषतः॥

पूजनके पश्चात् विविध प्रकारके उत्तम और सात्त्विक पदार्थोंसे ब्राह्मणोंको भोजन करानेके बाद ही स्वयं भोजन करना चाहिये।

इस दिन पंचांग-श्रवण किया जाता है। नवीन पंचांगसे उस वर्षके राजा, मन्त्री, सेनाध्यक्ष आदिका तथा वर्षका फल श्रवण करना चाहिये। सामर्थ्यानुसार पंचांग-दान करना चाहिये तथा प्याऊ (पौसला)-की स्थापना करनी चाहिये। आजके दिन नया वस्त्र धारण करना चाहिये तथा घरको ध्वज, पताका, बन्दनवार आदिसे सजाना चाहिये। आजके दिन निम्बके कोमल पत्तों, पुष्पोंका चूर्ण बनाकर उसमें काली मिर्च, नमक, हींग, जीरा, मिस्री और अजवाइन डालकर खाना चाहिये, इससे रुधिर-विकार नहीं होता और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इस दिन नवरात्रके लिये घट-स्थापन और तिलकव्रत भी किया जाता है। इस व्रतमें यथासम्भव नदी, सरोवर अथवा घरपर स्नान करके संवत्सरकी मूर्ति बनाकर उसका '**चैत्राय नमः**', '**वसन्ताय नमः**' आदि नाम-मन्त्रोंसे पूजन करना चाहिये। इसके बाद विद्वान् ब्राह्मणका पूजन-अर्चन करना चाहिये।

वासन्तिक नवरात्र—चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघके शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे नवमीतकके नौ दिन नवरात्र कहलाते हैं। इस प्रकार एक संवत्सरमें चार नवरात्र होते हैं, इनमें चैत्रका नवरात्र 'वासन्तिक नवरात्र' और आश्विनका नवरात्र 'शारदीय नवरात्र' कहलाता है। इनमें आद्याशक्ति भगवती दुर्गाकी विशेष आराधना की जाती है।

श्रीरामनवमी—श्रीरामनवमी सारे जगत्के लिये सौभाग्यका दिन है; क्योंकि अखिल विश्वपति सच्चिदानन्दघन श्रीभगवान् इसी दिन दुर्दान्त रावणके अत्याचारसे पीड़ित पृथ्वीको सुखी करने और सनातन धर्मकी मर्यादाकी स्थापना करनेके लिये मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें प्रकट हुए थे।

चैत्र शुक्ल नवमीको 'श्रीरामनवमी'-का व्रत होता है। यह व्रत मध्याह्नव्यापिनी दशमीविद्धा नवमीको करना चाहिये। अगस्त्यसंहितामें कहा गया है कि यदि चैत्र शुक्ल नवमी पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त हो और वही मध्याह्नके समय रहे तो महान् पुण्यदायिनी होती है। अष्टमीविद्धा नवमी विष्णुभक्तोंको छोड़ देनी चाहिये। वे नवमीमें व्रत तथा दशमीमें पारणा करें।

अनंगत्रयोदशी—चैत्रमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी 'अनंगत्रयोदशी' कहलाती है। इस दिन व्रत करनेसे दाम्पत्य-प्रेममें वृद्धि होती है तथा पति-पुत्रादिका अखण्ड

सुख प्राप्त होता है। भविष्यपुराणके अनुसार चैत्र शुक्ल त्रयोदशीको कामदेव, रति और वसन्तकी पूजा करके दम्पती सुख-सौभाग्य तथा पुत्रकी प्राप्ति करते हैं।

यह व्रत इस तिथिको आरम्भकर वर्षभर प्रत्येक त्रयोदशीको किया जाता है।

श्रीहनुमज्जयन्ती—श्रीहनुमान्‌जीकी जयन्तीकी तिथिके विषयमें दो मत प्रचलित हैं—१. चैत्र शुक्ल पूर्णिमा और २. कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी। हनुमज्जयन्तीके दिन श्रीहनुमान्‌जीकी भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिये।

सौभाग्यशयन-व्रत—सौभाग्यशयनव्रतकी महिमाके सम्बन्धमें मत्स्यपुराणमें वर्णन आया है कि पूर्वकालमें जब सम्पूर्ण लोक दग्ध हो गये थे तब समस्त प्राणियोंका सौभाग्य एकत्र हो गया। वह सौभाग्यतत्त्व वैकुण्ठलोकमें जाकर भगवान् श्रीविष्णुके वक्ष:स्थलमें स्थित हो गया। तदनन्तर दीर्घकालके बाद जब पुन: सृष्टिरचनाका समय आया, तब प्रकृति और पुरुषसे युक्त सम्पूर्ण लोकोंके अहंकारसे आवृत हो जानेपर श्रीब्रह्माजी तथा श्रीविष्णुजीमें स्पर्धा जाग्रत् हुई। उस समय पीले रंगकी (अथवा शिवलिंगके आकारकी) अत्यन्त भयंकर अग्निज्वाला प्रकट हुई। उससे भगवान्‌का वक्ष:स्थल तप उठा, जिससे वह सौभाग्यपुंज वहाँसे गलित हो गया। श्रीविष्णुके वक्ष:स्थलका आश्रय लेकर स्थित वह सौभाग्य अभी रसरूप होकर धरतीपर गिरने भी न पाया था कि ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिने उसे आकाशमें ही रोककर पी लिया, जिससे दक्षका अद्भुत प्रभाव हो गया। उनके पीनेसे बचा हुआ जो अंश पृथ्वीपर गिरा, वह आठ भागोंमें बँट गया। उससे ईख, रसराज (पारा) आदि सात सौभाग्यदायिनी औषधियाँ उत्पन्न हुईं तथा आठवाँ पदार्थ नमक हुआ—इन आठोंको 'सौभाग्याष्टक' कहते हैं।

ब्रह्माजीके पुत्र दक्षने पूर्वकालमें जिस सौभाग्यरसका पान किया था, उसके अंशसे उन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई, जो सती नामसे प्रसिद्ध हुईं। अपने अद्भुत सौन्दर्य, माधुर्य तथा लालित्यके कारण ललिता भी इनका नाम है। ये देवी सती तीनों लोकोंकी सौभाग्यरूपा हैं। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको विश्वात्मा भगवान् शंकरके साथ इनका विवाह हुआ था। अत: इस दिन उत्तम सौभाग्य तथा भगवान् शंकरकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये सौभाग्यशयन नामक व्रत किया जाता है। यह व्रत सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है।

व्रतीको चाहिये कि इस दिन प्रात: तिलमिश्रित जलसे स्नानकर सतीदेवीके साथ ही भगवान् शंकरका पूजन करे।

गणगौर—दाम्पत्यप्रेमके उच्चादर्शकी शिक्षा देनेहेतु शिव-पार्वतीके रूपमें ईसरगौर (ईश्वर-गौरी)-की पूजाका विधान विशेषरूपसे राजस्थानमें ईसर-गणगौरके महोत्सवरूपमें बड़ी ही श्रद्धासे सम्पन्न होता आया है। यह गौरपूजा सौभाग्यवती स्त्रियों और कन्याओंका विशेष त्योहार है। राजस्थानमें कन्याओंके लिये विवाहके उपरान्त प्रथम चैत्र शुक्ल तृतीयातक गणगौरका पूजन करना आवश्यक कर्तव्य समझा जाता है। वे होलिकादहनकी भस्म और तालाबकी मिट्टीसे ईसर-गौरकी प्रतिमाएँ बनाती हैं। उन्हें वस्त्रालंकरणोंसे सुसज्जितकर घरके चौकमें स्थापित करके श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा करती हैं। सौभाग्यवती स्त्रियोंके साथ कुमारी कन्याएँ भी श्रेष्ठ वरकी प्राप्तिके लिये इस पूजनमें भाग लेती हैं। इन दिनों पूजाके लिये हरी दूर्वा, पुष्प और जल लानेहेतु ये अपनी टोलियाँ बनाकर प्रतिदिन प्रात: सुमधुर गीत गाती हुई घरसे निकलती हैं। पासके उद्यानों एवं तालाबों-सरोवरोंसे कलशोंमें जल भरकर दूर्वा-फल-फूलसहित लौटती हैं और पवित्र स्थानपर गणगौरकी पूजा करती हैं।

चैत्र शुक्ल तृतीयाको प्रात:कालकी पूजाके बाद तालाब, सरोवर, बावड़ी या कुएँपर जाकर मंगलगानसहित गणगौरकी प्रतिमाओंका विसर्जन किया जाता है। गणगौरकी विदाई अथवा विसर्जनका दृश्य देखनेयोग्य होता है। उस समय कन्याएँ एवं विवाहिताएँ वस्त्राभूषणोंको धारणकर सुसज्जित हो उसमें भाग लेती हैं। ईसर-गणगौरकी प्रतिमाओंको जलमें विसर्जित किया जाता है।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

अपमृत्यु

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र यथासमय मिला। आपकी धर्मपत्नीकी दु:खद मृत्युका समाचार पढ़कर बड़ा खेद हुआ। क्या कहा जाय, उसके प्रारब्धमें यही भोग बदा था। यह आत्महत्या हो या जीवनका करुणाजनक अन्त, विधाताका ऐसा ही विधान था, यह मानकर धैर्य धारण करना चाहिये। आपको, कुटुम्बियोंको तथा आपके वृद्ध माता-पिताको इस घटनासे मार्मिक कष्ट होना स्वाभाविक है। किंतु क्या किया जाय, मनुष्यका इसमें कोई वश नहीं; अपने प्रारब्ध अथवा भगवान्‌की इच्छासे जैसा भी सुख-दु:ख प्राप्त हो, उसे भगवान्‌का भेजा हुआ उपहार समझकर प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करे, यही मनुष्यका कर्तव्य है। अपनेको दिखायी नहीं देता, परंतु अनुकूल या प्रतिकूल जो कुछ भी ईश्वरेच्छासे प्राप्त होता है, वह जीवके कल्याणके ही लिये होता है। कल्याणमय प्रभु कभी किसी जीवका अमंगल नहीं करते। उनकी ओरसे जो दण्ड मिलता है, उसमें भी उनकी अपार दया भरी रहती है। वे कर्मोंका भोग कराकर जीवको विशुद्ध एवं मुक्तिका अधिकारी बनाना चाहते हैं।

इस तरहकी मृत्युको लोकमें अकाल मृत्यु भी कहते हैं, किंतु वास्तवमें अकाल मृत्यु प्राय: किसीकी नहीं होती। प्रत्येक जीवकी मृत्युका समय उसके जन्मके साथ ही नियत हो जाता है। वह समय आनेपर ही मृत्यु होती है। अत: वह कालमृत्यु ही है। प्रारब्धका भोग भी तीन प्रकारसे होता है, अतएव उसके तीन भेद हो जाते हैं। उन भेदोंको क्रमश: 'अनिच्छा' 'परेच्छा' एवं 'स्वेच्छा' प्रारब्ध कहते हैं। जिनको प्राप्त करनेकी इच्छा न तो अपने मनमें रही हो और न दूसरे किसीकी ही इच्छा ऐसा करने-करानेकी रही हो, उस अवस्थामें अनायास दैवयोगसे अपने-आप जो सुख-दु:खरूप भोग प्राप्त हो जाते हैं, वे अनिच्छा-प्रारब्धकी देन हैं। दूसरोंकी इच्छासे प्राप्त होनेवाले सुख-दु:ख परेच्छा-प्रारब्धके फल हैं तथा स्वयं इच्छा करके प्रयत्न करनेपर जो सुख-दु:ख उपलब्ध होते हैं, वे स्वेच्छा-प्रारब्धजनित माने गये हैं।

इस धारणाके अनुसार यदि उसके शरीरका यह दाह असावधानीके कारण अथवा बिना जाने हो गया हो तो इसे अकाल मृत्यु न कहकर अनिच्छा-प्रारब्धका भोग मानना चाहिये। अपने किये हुए पूर्वसंचित कर्मोंमें-से जो कर्म फल देनेको उन्मुख होते हैं, उन्हें प्रारब्ध नाम दिया गया है। वह प्रारब्ध ही पूर्वांकित प्रकारसे अनिच्छा, परेच्छा और स्वेच्छासे भोगा जाता है।

परंतु जैसा कि आप लिख रहे हैं, उसने जान-बूझकर अपने शरीरको जला लिया, तो यह स्पष्ट ही आत्महत्या है। आत्महत्यासे होनेवाली मृत्युको हम स्वेच्छा-प्रारब्धका फल कह सकते हैं। एक बात और ध्यान देनेकी है। मृत्यु चाहे स्वेच्छा-प्रारब्धसे हुई हो या अनिच्छा-प्रारब्धसे, उसमें जो निमित्त बन गया अग्निदाह, वह शास्त्रदृष्टिसे अच्छा नहीं है। आगमें जलने या पानीमें डूबने आदिसे होनेवाली मृत्युको 'अपमृत्यु' कहते हैं, इससे जीवकी सद्‌गतिमें बाधा पड़ती है। अनिच्छा-प्रारब्धसे होनेवाली मृत्यु—अपमृत्यु पापका फल होनेपर भी स्वयं पापरूप नहीं है, परंतु आत्महत्या पापका फल होनेके साथ-साथ स्वत: एक महान् पाप भी है।

शास्त्रोंमें अपमृत्युके दोषसे मुक्त होनेके लिये विधिपूर्वक नारायण-बलि करनेकी आज्ञा दी गयी है। साथ ही गीता एवं श्रीमद्भागवत आदिके पाठसे भी दुर्मृत्युजनित दोषकी निवृत्ति होकर मृतात्माकी सद्‌गति हो जाती है। आत्महत्याका फल बड़ा भयंकर बताया गया है। आत्महत्यारोंको नरकमें उस अन्धकारमय गर्तमें गिरना पड़ता है, जहाँ कभी सूर्यके दर्शन नहीं होते। यजुर्वेद (४०।३)-में लिखा है—'**असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता:। ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जना:॥**'

अर्थात् असुरोंके जो प्रसिद्ध नाना प्रकारकी योनियाँ एवं नरकरूप लोक हैं, वे सभी अज्ञान तथा दु:ख-क्लेशरूप महान् अन्धकारसे आच्छादित हैं; जो कोई भी

आत्माकी हत्या करनेवाले मनुष्य हैं, वे मृत्युके अनन्तर उन्हीं भयंकर लोकोंको बार-बार प्राप्त होते हैं।

इसके लिये मेरी राय तो यह है कि विधि-विधानके साथ मृतात्माका श्राद्ध हो, नारायण-बलि हो। जिस स्थानपर उसकी मृत्यु हुई हो, वहाँ एक सप्ताहतक गीता, श्रीविष्णुसहस्रनाम तथा श्रीमद्भागवतका सप्ताह हो। अखण्ड हरिकीर्तनकी भी व्यवस्था की जाय और इन सबका पुण्य मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे संकल्प कर दिया जाय। इससे भगवान्‌की कृपा होगी, जिससे सद्‌गति अवश्यम्भावी है।

शेष सब भगवान्‌की दया है। धैर्यपूर्वक मनको शान्त रखकर मृत व्यक्तिकी सद्‌गतिके लिये शास्त्रीय उपाय करना अपना धर्म है। आप तो स्वयं समझदार हैं। आपको अधिक क्या लिखा जाय? कष्टके लिये क्षमा करें। अनेक कारणोंसे पत्रोत्तर देनेमें अधिक विलम्ब हुआ है, इसके लिये मुझे बड़ा संकोच है। शेष प्रभुकृपा।

(२)

अपना सुधार सर्वप्रथम होना चाहिये

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ, समाचार ज्ञात हुए।

(१) भगवन्नामका जितना प्रचार दिखायी देता है, वास्तवमें वह उतना नहीं है। जितना है, उतना भी सम्पूर्णत: निष्कामभावसे नहीं है। अत: इसका फल नहीं दिखायी देता।

(२) अपने इष्टदेवकी आज्ञा मानकर अन्य देवताओंकी भी पूजा की जा सकती है।

(३) अपना जीवन सुधारनेसे ही वास्तविक सुधार होता है, समाजका सुधार तो उसके अन्तर्गत है। कोई भी व्यक्ति बिना अपना सुधार किये औरोंका सुधार करनेका अधिकारी ही नहीं होता। अत: अपना सुधार सर्वप्रथम होना चाहिये, अन्यथा हम अपनी त्रुटियोंको कायम रखते हुए समाजकी सेवा नहीं कर सकेंगे। आज यही सर्वत्र देखनेमें आ रहा है। पुस्तकोंके ज्ञानसे समाजका सुधार नहीं हो सकता। समाजका सुधार तो आचारको कायम रखनेसे ही हो सकेगा। सबसे सप्रेम यथायोग्य। शेष प्रभुकृपा।

(३)

कन्याके यहाँ भोजन

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार तो कन्याके पुत्र (दौहित्र) हो जानेपर उसके घरमें माता-पिताको भोजन करना निषिद्ध नहीं है; क्योंकि तब दौहित्रका हिस्सा हो जाता है और दौहित्रका किया हुआ श्राद्ध नाना-नानीको प्राप्त होता है, परंतु भोजन न करनेकी प्रथा थी बड़ी अच्छी। इसमें खास बात यह थी कि कन्याका कुछ भी हक हमारे घरमें न आ जाय। कन्याका सब कुछ ले लें और केवल उसके घर खायँ नहीं, इसका कोई महत्त्व नहीं है। आजकल नयी विचारधारामें लोग पैसा देकर भोजन कर लेते हैं। यह भी कोई बुरी चीज नहीं है। शेष भगवत्कृपा।

(४)

पापोंसे छूटनेके उपाय

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। पहले भी कई पत्र मिल चुके। मैंने पहले भी आपको लिखा था कि मनुष्य यदि पिछले पापोंका आत्यन्तिक पश्चात्ताप करे और भविष्यमें पाप नहीं करनेकी प्रतिज्ञा करे तो भगवान् उसके पाप क्षमा कर देते हैं। पापोंसे छुटकारा पानेके लिये भगवान्‌की शरणागति ही सर्वोत्तम साधन है। भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे कहा है कि महापापी भी यदि अनन्यभावसे मेरी शरणमें आ जाता है तो वह बहुत शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है। उसे सदा मिलनेवाली शान्ति मिलती है। उसका कभी विनाश नहीं होता और शरणागतिमें पापनाशका जिम्मा भी भगवान् ले लेते हैं। मेरे पास पापनाशका कोई उपाय होता तो मैं उसे करता, पर मेरे पास तो अन्य कोई साधन नहीं है। आप स्वयं भगवान्‌के शरणागत होकर अपने पापोंका नाश कर सकते हैं।

संसारमें दुश्मन कोई नहीं। अपना मन ही अपना दुश्मन है। बिना किसी पूर्व कर्मके हमें कोई दु:ख नहीं दे सकता। दु:ख देनेमें कोई निमित्त भले ही बन जाय पर बिना प्रारब्ध वह दु:ख नहीं दे सकता और प्रारब्धमें दु:ख होनेपर किसीके मिटाये नहीं मिट सकता है। भगवान् सर्वसमर्थ हैं। उनकी कृपासे सारे पाप जल सकते हैं। आप उन्हींपर निर्भर कीजिये। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ३। १७ बजेतक	रवि	अनुराधा रात्रिमें ८।५४ बजेतक	२२ मई	**मूल** रात्रिमें ८। ५४ बजेसे।
द्वितीया रात्रिशेष ४।२० बजेतक	सोम	ज्येष्ठा ,, १०।४३ बजेतक	२३ ,,	**धनुराशि** रात्रिमें १०। ४३ बजेसे।
तृतीया ,, ४। ५८ बजेतक	मंगल	मूल ,, १२।७ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** दिनमें ४। ३९ बजेसे रात्रिशेष ४। ४८ बजेतक, **मूल** रात्रिमें १२। ७ बजेतक।
चतुर्थी ,, ५। ३ बजेतक	बुध	पू० षा० ,, १२।५७ बजेतक	२५ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। ३५ बजे, **रोहिणी नक्षत्र**का सूर्य प्रातः ६। १५ बजे।
पंचमी ,, ४।३८ बजेतक	गुरु	उ० षा० ,, १।१९ बजेतक	२६ ,,	**मकरराशि** प्रातः ७। ३ बजेसे।
षष्ठी रात्रिमें ३।४३ बजेतक	शुक्र	श्रवण ,, १।१२ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३। ४३ बजेसे।
सप्तमी ,, २।२१ बजेतक	शनि	धनिष्ठा ,, १२।३८ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।२ बजेतक, **कुंभराशि** दिनमें १२।५५ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें १२। ५५ बजे।
अष्टमी ,,१२। ३९ बजेतक	रवि	शतभिषा रात्रिमें ११।४६ बजेतक	२९ ,,	**श्रीशीतलाष्टमीव्रत।**
नवमी ,, १०। ३७ बजेतक	सोम	पू० भा० ,, १०।३२ बजेतक	३० ,,	**मीनराशि** दिनमें ४। ५० बजेसे।
दशमी ,,८। २२ बजेतक	मंगल	उ० भा० ,, ९। ६ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। ३० बजेसे रात्रिमें ८। २२ बजेतक, **मूल** रात्रिमें ९। ६ बजेसे।
एकादशी सायं ५।५९ बजेतक	बुध	रेवती ,, ७। ३० बजेतक	१ जून	**मेषराशि** रात्रिमें ७। ३० बजेसे, **अचला एकादशीव्रत** (सबका), **पंचक** समाप्त रात्रिमें ७। ३० बजे।
द्वादशी दिनमें ३।३० बजेतक	गुरु	अश्विनी सायं ५।४९ बजेतक	२ ,,	**प्रदोषव्रत, मूल** सायं ५। ४९ बजेतक।
त्रयोदशी ,, १।२ बजेतक	शुक्र	भरणी दिनमें ४।११ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें १।२ बजेसे रात्रिमें ११।५१ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिमें ९।४८ बजेसे।
चतुर्दशी ,, १०।४० बजेतक	शनि	कृत्तिका ,, २।३८ बजेतक	४ ,,	**वटसावित्रीव्रत, श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या,, ८।२७ बजेतक	रवि	रोहिणी ,, १।१६ बजेतक	५ ,,	**अमावस्या, मिथुनराशि** रात्रिमें १२। ४३ बजेसे।

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ६। २६ बजेतक द्वितीया रात्रिशेष ४। ४८ बजेतक	सोम	मृगशिरा दिनमें १२।८ बजेतक	६ जून	**चन्द्रदर्शन।**
तृतीया रात्रिमें ३। ३१ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,,११।२२ बजेतक	७ ,,	**कर्कराशि** रात्रिशेष ५। ३ बजेसे, **रम्भातृतीया।**
चतुर्थी ,, २।३९ बजेतक	बुध	पुनर्वसु ,,१०।५७ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। ५ बजेसे रात्रिमें २। ३९ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मृगशिरा नक्षत्रका सूर्य** प्रातः ५। ३४ बजे।
पंचमी ,, २।१७ बजेतक	गुरु	पुष्य ,,११।० बजेतक	९ ,,	**मूल** दिनमें ११। ० बजेसे।
षष्ठी ,, २।२४ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा ,,११।३१ बजेतक	१० ,,	**सिंहराशि** दिनमें ११। ३१ बजेसे।
सप्तमी ,, ३।५ बजेतक	शनि	मघा ,,१२।३३ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३। ५ बजेसे, **मूल** दिनमें १२। ३३ बजेतक।
अष्टमी रात्रिशेष ४। ११ बजेतक	रवि	पू० फा० ,, २।४ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। ३८ बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें ८। ३४ बजेसे।
नवमी अहोरात्र	सोम	उ० फा० ,, ४।३ बजेतक	१३ ,,	× × × ×
नवमी प्रातः ५।४४ बजेतक	मंगल	हस्त सायं ६। २१ बजेतक	१४ ,,	**श्रीगंगादशहरा।**
दशमी दिनमें ७। ३५ बजेतक	बुध	चित्रा रात्रिमें ८। ५५ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८। ३५ बजेसे, **तुलाराशि** दिनमें ७। ३८ बजेसे, **मिथुन संक्रान्ति** प्रातः ५। ४९ बजे।
एकादशी ,,९।३६ बजेतक	गुरु	स्वाती ,,११। ३३ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।३६ बजेतक, **निर्जला भीमसेनी एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वदशी ,,११।३६ बजेतक	शुक्र	विशाखा ,, २।५ बजेतक	१७ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें ७। २७ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,,१। २५ बजेतक	शनि	अनुराधा रात्रिशेष ४।२१ बजेतक	१८ ,,	**मूल** रात्रिशेष ४। २१ बजेसे।
चतुर्दशी ,,२।५७ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा अहोरात्र	१९ ,,	**भद्रा** दिनमें २।५७ बजेसे रात्रिमें ३। २९ बजेतक, **व्रत-पूर्णिमा।**
अमावस्या ,,४।१ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा प्रातः ६। १६ बजेतक	२० ,,	**पूर्णिमा, धनुराशि** प्रातः ६। १६ बजेसे।

कृपानुभूति

व्रजका वह गाड़ीवान

मैं रिटायर्ड बैंक प्रबन्धक हूँ और इस समय मेरी आयु ७३ वर्ष है। घटना वर्ष १९६७ ई० की है, जब मैं कक्षा ९ का विद्यार्थी था, उम्र थी १४ वर्ष। गवर्नमेंट कॉलेजमें हमारे हिन्दी विषयके अध्यापक श्रीशिवदत्त चतुर्वेदीजी थे, जो बादमें राष्ट्रपति-पुरस्कारसे भी सम्मानित हुए। हिन्दीकी कक्षामें सूरदासके पदोंमें कृष्णका गोकुलसे मथुरा जानेका भावार्थ समझाते हुए वे इतने भाव-विभोर हो जाते कि हमारे मस्तिष्कमें कृष्ण एवं मथुरा-गोकुलके दृश्य दृष्टिगत होने लगते। जिसका प्रभाव यह हुआ कि मथुरा-गोकुल जाकर भगवान् कृष्णके दर्शन करनेकी इच्छा मेरे बाल मनमें बलवती हो गयी।

शामको घर आनेपर मैंने बड़ोंसे पूछा कि मथुरा कहाँ है? उन लोगोंने बताया कि यहाँ (इटावा)-से १८० कि०मी० दूर है, सीधी बस जाती है और किराया ३ रुपया सवारी है। अब तो कृष्ण और उनका व्रज ही अहर्निश मेरी आँखोंके सामने घूमता रहता। किसी प्रकार उस वर्षकी पढ़ाई पूरी की। मईमें वार्षिक परीक्षाफल लेनेके पश्चात् मैंने अपनेसे ३ वर्ष बड़े भाईको साथमें मथुरा चलनेहेतु राजी कर लिया, परंतु घरवालोंने उम्र कम होनेके कारण जानेको मना कर दिया। पर बादमें हमारी हठके कारण हमारे ताऊजी राजी हो गये एवं चलते समय १०-१० रुपये भी दिये। हम लोगोंके पास ५-५ रुपये पहलेसे ही थे।

मथुरा पहुँचकर एक दिन मथुरा घूमा एवं रात्रि-विश्राम एक नि:शुल्क धर्मशालामें जमीनपर लेटकर किया, दूसरे दिन गोकुल जानेहेतु धर्मशालाके प्रबन्धकने बताया कि कच्ची सड़क होकर ताँगा जाता है, जो काफी घूमकर जाता है। तुम लोग लड़के हो, कदम्बवन होकर सीधे पैदल निकल जाओ, ज्यादा दूर नहीं है। हम दोनों भाई कदम्बवन होकर पैदल जा रहे थे, हमारी निगाह जमीनपर न होकर कदम्ब वृक्षोंपर थी, शायद कहीं पीले वस्त्रोंमें कृष्ण किसी डालपर बैठे हों, परंतु ऐसा नहीं हुआ।

लगभग ४-५ कि०मी० पैदल चलनेके पश्चात् यमुना नदी तो आ गयी, परंतु यमुनामें पानी इतना अधिक था कि उसे पैदल पारकर गोकुल पहुँचना असम्भव था।

एक स्थानीय व्यक्तिने बताया कि आप लोग गलत जगह आ गये हो, यहाँसे १ कि०मी० आगे यमुनाके किनारे घाट है; वहाँ पानी कम है, पैदल निकल जाओगे।

मईका महीना और पैदल चलनेकी थकान; यमुनाजीका जल पीकर एक कदम्बकी छाँवमें बैठ गया, लगभग ५ मिनट बाद बैलोंके गलेमें बँधे घुँघरुओं-जैसी आवाज सुनायी दी, कुछ ही क्षणमें एक बैलगाड़ी आकर पासमें रुकी, गाड़ीवानने पूछा कहाँ जाना है? मैंने कहा—गोकुल जाना है, यमुना पार करनी है। गाड़ीवान बोला—गाड़ीमें बैठो। हम दोनों भाई बैलगाड़ीमें बैठकर यमुना पार हो गये, गाड़ीसे उतरकर गोकुलके मन्दिरोंकी ओर चल दिये, आधा मिनट बाद मुड़कर पीछे देखा, आश्चर्य! आसपास कोई बैलगाड़ी नहीं थी! हम कृष्णको कदम्बके वृक्षोंमें तलाश रहे थे, परंतु मिले यमुना-किनारे गाड़ीवानके वेशमें, हमारे प्राण विह्वल हो गये। किशोर आयुकी यह अविस्मरणीय घटना थी, जिसने हमारे जीवनकी दिशा एवं दशा बदल दी एवं अभी भी मैं आशान्वित हूँ कि पुनः कभी किसी वेशमें दर्शन होंगे ······ राधे-राधे।—**अनिल द्विवेदी**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गंगा, गायत्री और गोमाताकी कृपासे रोगमुक्ति

लगभग पचास वर्ष पहलेकी बात है। प्रात:कालका समय था। शुकतीर्थके उद्धारक बाबा कल्याणदेवजी गंगामें स्नान कर रहे थे, उसी समय एक युवकने गंगाकी तीव्र धारामें छलाँग लगा दी। बाबाने अन्य लोगोंकी सहायतासे उसे बाहर निकलवाया। कुछ देर विश्रामके पश्चात् बाबाने उसका परिचय और इस प्रकार अपने प्राण गँवानेका कारण पूछा। उस युवकने कहा—मेरा नाम बीरू है और मैं पासके ही एक गाँवका रहनेवाला हूँ। दुर्भाग्यसे मुझे टी०बी०का रोग लग गया है।

'यह छूतकी बीमारी है और लाइलाज भी है'—यह कहकर मेरे परिजनों और गाँववालोंने मुझे मेरे गाँवसे ही निकाल दिया। ऐसा दुखी जीवन जीनेसे क्या लाभ है! ऐसा सोचकर मैंने गंगामें डूबकर अपने प्राण गँवानेका निर्णय कर लिया और अब मैं आपके समक्ष बैठा हूँ। बाबाने प्यारसे उसके सिरपर हाथ फेरा और उसे आश्वस्त करते हुए कहा—तुम मेरे पास रहो और नित्य नियमपूर्वक गंगा-स्नानकर गायत्रीका जप करो और फिर गंगाजल, गोमूत्र और गोदुग्धका सेवन करो, गंगामैया तुमपर कृपा करेंगी। बाबाने उसके रहनेके लिये एक कुटिया बनवा दी। उसमें रहकर उसने बाबाके द्वारा बतायी उपचारकी विधिको अपना लिया। गोमूत्र और गोदुग्धका प्रबन्ध बाबाने गोशालासे कर दिया। तीन महीनेके पश्चात् उसके शरीरमें परिवर्तन दीखने लगा और छ: महीनेके बाद वह युवक बीमारीसे पूर्णत: मुक्त हो गया।

पूर्णिमाका दिन था। उसके गाँवसे कुछ लोग, जिनमें उस युवकके परिजन भी थे, गंगास्नानके लिये यहाँ आये। संयोगसे वह युवक भी गंगामें स्नान कर रहा था। गाँवके कुछ लोगोंने उस युवकको पहचान लिया और उसके परिजनोंको बताया। उसका हृष्ट-पुष्ट एवं स्वस्थ शरीर देखकर उसके परिजन इसका रहस्य पूछने लगे। उस युवकने कहा—यह बाबाकी प्रेरणाका फल है। अब वे लोग उससे वापस गाँव चलनेको कहने लगे, परंतु उसने स्पष्टरूपसे इनकार करते हुए कहा—जिन्होंने मुझे जीवनदान दिया है, उनके चरणोंका आश्रय छोड़कर जीवनपर्यन्त कहीं नहीं जाऊँगा। ऐसा सुनकर उसके गाँवके सब लोग चले गये और उस युवकने जीवनभर शुकतालमें ही रहनेका अपना संकल्प पूर्ण किया।

—अर्जुनलाल बंसल

(२)

मन्त्रसे माटीकी मूरत जीवन्त हो गयी

२३ जनवरी १९७० ई० को नेताजी सुभाषचन्द्र बोसके जन्मदिवसपर रायगंज, जिला-पश्चिम दिनाजपुर, पश्चिम बंगालमें 'विद्यासागर ज्ञान मन्दिर' नामसे सार्वजनिक हिन्दी पुस्तकालयकी स्थापना की गयी। सर्वप्रथम श्रीसरस्वतीपूजाहेतु पण्डितजी आये। मेरे मनमें प्रश्न आया—प्राण-प्रतिष्ठा करेंगे, क्या सहीमें प्राण संचारित होगा? पण्डितजीने जैसे ही मन्त्र उच्चारित किये, मेरे सारे रोम खड़े हो गये, शरीर काँपने लगा। मैंने माताको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और मन-ही-मन कहा—माँ! मैं सच्चे मनसे निष्ठापूर्वक पुस्तकालयके सभी कार्योंको देखूँगा, तुम भी मेरे स्वाभिमानकी अवश्य रक्षा करना।

धीरे-धीरे चारों वेद, गीता, रामायण, उपनिषद्, कुरान-शरीफ, बाइबिल, जैन-धर्मके ग्रन्थ तथा हिन्दी एवं बँगला भाषाके दिग्गज विद्वानोंद्वारा रचित ग्रन्थोंका संग्रह किया गया। कई सदस्योंने अश्लील उपन्यासोंकी माँग की, मैंने साफ इनकार कर दिया।

छठा वर्ष पूरा हुआ। इस बार वे ही पण्डितजी पूजाके उपरान्त हाथ जोड़कर बोले—सभी देवी-देवता अपने-अपने स्थानको प्रस्थान करें और गणेशजी तथा लक्ष्मीजी यहाँ विराजमान रहें। मनमें खटका लगा, माता तो प्रस्थान कर गयीं। अब पुस्तकालय नहीं चलेगा। कई सदस्य उसमें प्रतिकूल वारदात करने लगे। विरोध करनेपर तीन-तीन बार मारपीट करनेकी योजना बनायी,

मगर प्रत्येक बार पहली रातको माता मुझे सतर्क कर देती थीं। 'जगदीश! सावधान, कल शामको पुस्तकालयमें तुमपर आक्रमण होगा।' हर बार ज्यादा-से-ज्यादा सदस्य उपस्थित होकर उनकी घटिया योजनापर पानी फेर देते थे।

एक दिन माताने मुझको आभास दिया—जगदीश! कभी भी नक्सली लोग आ सकते हैं, वे अपनी विचारधारासे सम्बन्धित साहित्य देखना चाहेंगे। अत: वैसी व्यवस्था तुम अवश्य करना। मैंने कुछ साम्यवादी विचारधाराकी पुस्तकें मँगवायीं एवं 'लेनिन' का एक चित्र भी आलमारीके शीशेके अन्दर रख दिया। कुछ दिनों बाद कई युवक उपद्रवी भावसे आये, मगर पुस्तकें एवं चित्र देखकर शान्त होकर चले गये।

एक बार पुस्तकालयमें बैठते ही माताने सतर्क किया, 'जगदीश! सावधान, पुस्तकें चोरी हो रही हैं।' श्रीपरमात्मा साहा बैठे थे। आप शुरूसे ही पुस्तकालयका काम बड़ी तत्परतासे देख रहे थे। मैंने पुस्तकें गिननेको कहा। बोले कुछ दिनों पहले ही तो हम दोनों गिन चुके हैं, सब ठीक ही तो है। दुबारा गिननेपर नौ पुस्तकें कम निकलीं। उद्देश्य मुझे बदनाम करना था। मगर माताकी कृपासे सारी योजना विफल हो गयी। अन्तमें मैंने उपसभापतिजीको त्याग-पत्र सुपुर्द कर दिया। पुस्तकालय भी सदा-सदाके लिये बन्द हो गया, पर इन घटनाओंसे मेरे मनमें यह दृढ़ विश्वास हो गया कि मन्त्रशक्तिसे आवाहन-पूजनके बाद मिट्टीकी मूर्ति मात्र मूर्ति नहीं रह जाती, बल्कि वह मूर्ति उस देवी-देवताकी आधिदैविक शक्तिसे सम्पन्न हो जाती है और वह हमारे भावानुसार फल भी देती है।

—**जगदीश प्रसाद शर्मा**

(३)

प्रेमकी पराकाष्ठा

कुछ समय पूर्वकी बात है, रामकुमार और रामविलास दोनों सगे भाई थे। आसामके एक मुकाममें उनकी दूकान थी। दोनों भाइयोंमें और उनकी पत्नियोंमें परस्पर अत्यन्त प्रेम था। दूकानका काम बहुत ठीक चलता था। वे सारा काम स्वयं करते। मेहनत और ईमानदारीसे उन दोनोंने थोड़े ही समयमें अच्छी पूँजी इकट्ठी कर ली थी। वे विलासितासे सर्वथा दूर रहते थे, मितव्ययी थे। उन्होंने जमा-पूँजीमेंसे कुछ रुपयोंसे गहने बनवाकर सुरक्षित रखना चाहा। बड़े भाई रामकुमार तथा भाभीके बहुत-अधिक आग्रहसे पहले रामविलास (छोटे भाई)-की स्त्रीके लिये गहना बनवाया गया। विवाह-शादी आदि शुभ अवसरोंपर ही गहना पहना जाता था, शेष समयोंमें पेटीमें सुरक्षित रहता था।

इनके एक बड़ी बहन थी—मनभरीबाई! माँ पहले मर गयी थी। इसलिये बहनने ही दोनोंको पाला-पोसा था। बहनके पतिका एक साल पहले देहान्त हो गया था। उसका लड़का गल्लेका व्यापार करता था। अनाज भरकर रखता, फिर धीरे-धीरे बेचता। पर उसके दुर्विपाकसे अनाजमें बड़ी मन्दी आ गयी। उसको आठ-दस हजारका घाटा हो गया। जहाँतक बना, गहना आदि बेचकर महाजनका ऋण उतारनेकी चेष्टा की गयी, पर लगभग तीन हजार रुपये दो महाजनोंके बाकी रह गये। वे बहुत कड़े आदमी थे। नालिश करके उन्होंने डिग्री करवा ली। मनभरीबाई पतिके मर जानेके पश्चात् भाइयोंके पास आसाम आयी थी और वहीं ठहर गयी थी। दोनों भाई उसे माँकी तरह मानते थे, भाइयोंकी पत्नियाँ बड़े आदर-सम्मानसे उसकी सेवा करतीं और उसके आज्ञानुसार चलतीं। इसी बीचमें मनभरीबाईके लड़केका अपनी माँके नाम गुप्त पत्र आया।

पत्रमें सारी स्थिति लिखी थी और माँको बुलवाया था। डिग्रीवाले महाजन डिग्री जारी करवाकर मकान नीलाम करवाना चाहते थे। मनभरीबाई अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हो गयी। उसकी बुद्धि भ्रमित हो गयी, सोचने लगी—किसी प्रकार पुरखोंकी प्रतिष्ठा और बच्चेकी जान बचानी है। पर भाइयोंसे कहनेकी उसे हिम्मत नहीं हुई। मनमें पाप-बुद्धि आयी। कामना ही पापकी जड़ होती है। उसने मनमें निश्चय किया—भाईकी पत्नीकी पेटीमेंसे गहना निकालकर ले चलना है। पीछे देखा जायगा। इससे एक बार तो काम चलेगा, लड़केके प्राण बच जायँगे। बादमें

कमा लेनेपर भाइयोंकी रकम वापस कर दी जायगी।

भाइयों और उनकी पत्नियोंको समझा-बुझाकर जानेका दिन निश्चय कर लिया गया और उपर्युक्त पाप-निश्चयके अनुसार भाईकी पत्नीकी पेटी खोलकर गहने निकाल लिये गये। चाभी इसीके पास रहती थी। संयोगसे जिस समय यह भाईकी पत्नीकी पेटी खोलकर गहना निकाल रही थी, उस समय उसी कोठरीमें सोये हुए छोटे भाई रामविलासकी नींद टूट गयी। उसने सब देख लिया, पर जान-बूझकर आँखें बन्द कर लीं। मनभरीबाई सफल-मनोरथ होकर कोठरीसे बाहर चली गयी। रामविलासने किसीसे कुछ नहीं कहा, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

उन सबसे विदा होकर दु:खित होती हुई मनभरीबाई अपने घर पहुँच गयी। किंतु उसके हृदयमें चौरकर्मके पश्चात्तापकी अन्तर्ज्वाला जल रही थी तथापि उसने गहना बेचकर अपने पुत्रको ऋणमुक्त किया। उसने अपने भाइयोंको भी पत्रद्वारा पूर्ण स्थितिसे अवगत कराया। इधर अपने बहनके घरका दु:खद समाचार जानकर छोटे भाई रामविलासने अपने बड़े भाई रामकुमारसे एकान्तमें कहा—'भाईजी! हमारी माँ बचपनमें ही चल बसी, तब बहनने ही हमको पाला-पोसा, आदमी बनाया। हम चाहें तब भी उसके ऋणसे उऋण नहीं हो सकते, फिर हमसे बड़ी होनेके कारण हमपर उसका अधिकार भी तो है ही, इस समय वह बहुत संकटमें है। पतिका देहान्त हो गया। घरमें घाटा लग गया। हमारी बहनने संकोचमें पड़कर और न चाहते हुए भी यह काम किया है, किंतु कष्ट यह होता है कि बहनने यहाँ रहते हुए हमें कुछ नहीं बताया, हम अपना सर्वस्व खोकर भी उसका दु:ख दूर करनेका प्रयत्न करते। ऐसी स्थितिमें अब उसे कुछ नहीं कहना है। आप कहें तो मैं भाभीजीको सब समझा दूँ।' छोटे भाईकी इस श्रेष्ठ भावनाको जान-सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। दोनोंने सलाह करके दोनों स्त्रियोंको बुलाया और उन्हें सारी बात बता दी। वे स्त्रियाँ भी सचमुच साध्वी थीं। छोटे भाईकी स्त्री (जिसका गहना था)-ने अपनी जेठानीके माध्यमसे यह कहलाया कि—'यह तो बहुत अच्छा हुआ कि इस संकटमें यह गहना बाईजीके काम आ गया। यहाँ तो व्यर्थ ही पड़ा था। उसका सदुपयोग हो गया, परंतु मुझे दु:ख इस बातका है कि मेरे मनमें गहनेके प्रति अवश्य कोई स्वार्थ या ममताकी बात है, जिस कारण बाईजीको संकोचमें पड़कर यह काम करना पड़ा और उन्होंने मुझसे कुछ कहा नहीं। शायद उनको यह शंका होगी कि माँगनेपर यह नहीं देगी। आप तीनों लोग तो दे ही देते, मेरे ही पापी हृदयके डरसे बाईजीको इस प्रकार करना पड़ा।' बहूकी बात सुनकर जेठ-जेठानीका हृदय गद्गद हो गया। उनकी आँखोंसे प्रेमके आँसू बह चले। उसके पति रामविलासके तो आनन्दका पार ही नहीं था। वह तो इस प्रकारकी साध्वी तथा उदारहृदया पत्नीकी प्राप्तिसे आज अपनेको अत्यन्त गौरवान्वित समझ रहा था।

दो वर्ष बाद मनभरीबाईकी कन्याके विवाहमें सारा परिवार वहाँ गया। मनभरीबाईने पहलेसे व्याजसमेत गहनेके पूरे रुपये तैयार कर रखे थे। उसके लड़केको व्यापारमें अकस्मात् लाभ हो गया था। मनभरीबाईने अपने भाई और उनकी पत्नियोंके सामने रुपयोंकी थैली रख दी और वह सुबक-सुबककर रोने लगी। सभीके धीरजका बाँध टूट गया—पाँचों रोने लगे। सबके हृदयोंमें पवित्र भावोंकी रसधारा उमड़ रही थी और वही आँसुओंके रूपमें बाहर बहने लगी थी।

उन्होंने रुपये नहीं लिये। बड़े आदरसे पूरा सन्तोष करवाकर लौटा दिये। उन चारोंने बहनके इस कार्यमें उसे नहीं, प्रत्युत अपनेको दोषी माना और कहा कि 'बाई! हमारे स्नेहमें कमी थी, प्रेमका अभाव था। हम अपनी वस्तुओंपर अपना ही अधिकार मानते थे, बहनका नहीं; तभी हमारी सन्तहृदया बहनको संकटके समय उससे बचनेके लिये छिपकर गहना लेना पड़ा। यह हमारा ही कलुष और दुर्भाग्य है!' धन्य है परस्परका यह सौहार्दपूर्ण एवं अनुकरणीय घटनाक्रम।—**हरदेवदास**

मनन करने योग्य

(१)

संस्कारोंकी रक्षा

'प्रवीणसागर' नामक उत्कृष्ट काव्यग्रन्थके रचयिता ठाकुर महेरामणजीके वंशोत्तराधिकारी राजकोटके ठाकुर लाखाजी राज राजकोट सिविल स्टेशनपर राजकीय अतिथियों तथा रेलवे बोर्डके उच्च अधिकारियोंके बीच एक मजलिसमें बैठे थे।

रेशमी सोफासेटपर राजकीय महानुभावोंके अतिरिक्त अंगरेज अधिकारीगण भी अपनी पत्नियोंके साथ बैठे थे।

सर लाखाजी राजको आये देखकर सब एकके बाद एक उठकर खड़े हो गये। अंग्रेजोंने अपनी रिवाजके अनुसार ठाकुर साहेबसे हाथ मिलाये। उनकी मेमोंने भी पाश्चात्य प्रथाके अनुसार सर लाखाजी राजसे हाथ मिलाये।

चमकती पोशाक तथा आभूषण-अलंकारोंसे दीप्तिमान् हँसी बिखेरते हुए सभी मेहमानोंसे मिलते हुए लाखाजी राज एक भारतीय अधिकारीसे मिले। फिर तो उन भारतीय अधिकारीकी पत्नीने मेमोंकी तरह ठाकुरके साथ हाथ मिलानेको अपना हाथ बढ़ाया, पर तुरंत ही ठाकुरने अपना हाथ बढ़ानेकी जगह उनके सामने दोनों हाथ जोड़ लिये।

उन महिलाका लंबा हाथ ऐसे ही रह गया, उसी समय ठाकुर साहेबके मुखसे ये शब्द सुनायी दिये—

'बहिन! हमारा धर्म यह नहीं है। हमलोग आर्य हैं। हमारे संस्कार दूसरे प्रकारके हैं। पश्चिमके लोगोंका यह अनुकरण हमारे देशके संस्कारोंको लज्जित करता है। हमारी प्रथा तो परस्पर हाथ जोड़कर नमन करनेकी ही है।'

(२)

अन्यायका कुफल

एक व्यापारीके दो पुत्र थे। एकका नाम था—धर्मबुद्धि, दूसरेका दुष्टबुद्धि। वे दोनों एक बार व्यापार करने विदेश गये और वहाँसे दो हजार अशर्फियाँ कमा लाये। अपने नगरमें आकर सुरक्षाके लिये उन्हें किसी वृक्षके नीचे गाड़ दिया और केवल सौ अशर्फियोंको बाँटकर काम चलाने लगे।

एक बार दुष्टबुद्धि चुपके उस वृक्षके नीचेसे सारी अशर्फियाँ निकाल लाया और बुरे कामोंमें उसने उनको खर्च कर डाला। एक महीना बीत जानेपर वह धर्मबुद्धिके पास गया और बोला—'आर्य! चलो, अशर्फियोंको हम लोग बाँट लें; क्योंकि मेरे यहाँ खर्च अधिक है।' उसकी बात मानकर जब धर्मबुद्धि उस स्थानपर गया और जमीन खोदी तो वहाँ कुछ भी न मिला। जब उस गड्ढेमें कुछ न दीखा, तब दुष्टबुद्धिने धर्मबुद्धिसे कहा—मालूम होता है तुम्हीं सब अशर्फियाँ निकालकर ले गये हो, अतः मेरे हिस्सेकी आधी अशर्फियाँ अब तुम्हें देनी पड़ेंगी।' उसने कहा—'नहीं भाई! मैं तो नहीं ले गया; तुम्हीं ले गये होगे।' इस प्रकार दोनोंमें झगड़ा होने लगा। इसी बीच दुष्टबुद्धि अपना सिर फोड़कर राजाके यहाँ पहुँचा और उन दोनोंने अपना-अपना पक्ष राजाको सुनाया। उन दोनोंकी बातें सुनकर राजा किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सका।

राजपुरुषोंने दिनभर उन्हें वहीं रखा। अन्तमें दुष्टबुद्धिने कहा कि 'वह वृक्ष ही इसका साक्षी है और कहता है कि यह धर्मबुद्धि सारी अशर्फियाँ ले गया है।' इसपर अधिकारी बड़े विस्मित हुए और बोले कि 'प्रातःकाल हमलोग चलकर वृक्षसे पूछेंगे।' इसके बाद जमानत देकर दोनों भाई भी घर आ गये।

इधर दुष्टबुद्धिने अपनी सारी स्थिति अपने पिताको समझायी और उसे पर्याप्त धन देकर अपनी ओर मिला लिया और कहा कि 'तुम वृक्षके कोटरमें छिपकर बोलना।' वह रातमें ही जाकर उस वृक्षके कोटरमें बैठ गया। प्रातःकाल दोनों भाई व्यवहाराधिपतियोंके साथ उस स्थानपर गये। वहाँ उन्होंने वृक्षसे पूछा कि 'अशर्फियोंको कौन ले गया है?' कोटरस्थ पिताने कहा—'धर्मबुद्धि।' इस असम्भव आश्चर्यकर घटनाको देख-सुनकर चतुर अधिकारियोंने सोचा कि अवश्य ही दुष्टबुद्धिने यहाँ किसीको छिपा रखा है। उन लोगोंने कोटरमें आग लगा दी। जब उसमेंसे निकलकर उसका पिता कूदने लगा, तब पृथ्वीपर गिरकर वह मर गया। इसे देखकर राजपुरुषोंने सारा रहस्य जान लिया और धर्मबुद्धिको पाँच सौ अशर्फियाँ दिला दीं एवं धर्मबुद्धिका सत्कार भी किया और दुष्टबुद्धिके हाथ-पैर काटकर उसको निर्वासित कर दिया। (**कथासरित्सागर**)

कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध कल्याणके पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क अब छपकर तैयार

संक्षिप्त स्कन्दपुराण (कोड 279)—यह पुराण कलेवरकी दृष्टिसे सबसे बड़ा है तथा इसमें लौकिक और पारलौकिक ज्ञानके अनन्त उपदेश भरे हैं। इसमें धर्म, सदाचार, योग, ज्ञान तथा भक्तिके सुन्दर विवेचनके साथ अनेकों साधु-महात्माओंके सुन्दर चरित्र पिरोये गये हैं। आज भी इसमें वर्णित आचारों, पद्धतियोंके दर्शन हिन्दू-समाजके घर-घरमें किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती-चरित्र, शिव-पार्वती-विवाह, कार्तिकेय-जन्म, तारकासुर-वध आदिका मनोहर वर्णन है। सचित्र, सजिल्द। मूल्य ₹३२५

संक्षिप्त गरुडपुराण (कोड 1189)—इस पुराणके अधिष्ठातृ देव भगवान् विष्णु हैं। इसमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, सदाचार, निष्काम कर्मकी महिमाके साथ यज्ञ, दान, तप, तीर्थ आदि शुभ कर्मोंमें सर्व साधारणको प्रवृत्त करनेके लिये अनेक लौकिक एवं पारलौकिक फलोंका वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें आयुर्वेद, नीतिसार आदि विषयोंका वर्णन और जीवात्माके कल्याणके लिये मृत जीवके अन्तिम समयमें किये जानेवाले कर्मोंका विस्तारसे निरूपण किया गया है। मूल्य ₹१६०

संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण (कोड 539)—भगवतीकी विस्तृत महिमाका परिचय देनेवाले इस पुराणमें दुर्गासप्तशतीकी कथा एवं माहात्म्य, हरिश्चन्द्रकी कथा, मदालसा-चरित्र, अत्रि-अनसूयाकी कथा, दत्तात्रेय-चरित्र आदि अनेक सुन्दर कथाओंका विस्तृत वर्णन है। मूल्य ₹९०

संक्षिप्त ब्रह्मपुराण (कोड 1111)—इस पुराणमें सृष्टिकी उत्पत्ति, पृथुका पावन चरित्र, सूर्य एवं चन्द्रवंशका वर्णन, श्रीकृष्णचरित्र, कल्पान्तजीवी मार्कण्डेय मुनिका चरित्र, तीर्थोंका माहात्म्य एवं अनेक भक्तिपरक आख्यानोंकी सुन्दर चर्चा की गयी है। भगवान् श्रीकृष्णकी ब्रह्मरूपमें विस्तृत व्याख्या होनेके कारण यह ब्रह्मपुराणके नामसे प्रसिद्ध है। सचित्र, सजिल्द। मूल्य ₹१२०

संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराण (कोड 631)—इस पुराणमें चार खण्ड हैं—ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, श्रीकृष्णजन्मखण्ड और गणेशखण्ड। इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका विस्तृत वर्णन, श्रीराधाकी गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका सुन्दर विवेचन, विभिन्न देवताओंकी महिमा एवं एकरूपता और उनकी साधना-उपासनाका सुन्दर विवेचन किया गया है। अनेक भक्तिपरक आख्यानों एवं स्तोत्रोंका भी इसमें अद्भुत संग्रह है। मूल्य ₹२००

गर्गसंहिता (कोड 517)—यह ग्रन्थ यदुकुलके महान् आचार्य महामुनि श्रीगर्गकी रचना है। इसमें श्रीमद्भागवतमें सूत्ररूपसे वर्णित श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंका विस्तृत वर्णन किया गया है। श्रीराधाजीके दिव्य आकर्षणसे आकर्षित भगवान् श्रीकृष्णका रासरासेश्वरी श्रीराधा एवं गोपिकाओंके साथ रासलीलाका इतना सुन्दर और सरस वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। पूर्वजन्ममें गोपिकाओंद्वारा श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्तिके लिये की गयी तपस्या तथा उनकी सरस कथाओंका भी इसमें सुन्दर वर्णन किया गया है। भगवान् श्रीकृष्णके अनुरागी भक्तोंके लिये यह दिव्य ग्रन्थ नित्य स्वाध्यायका विषय है। मूल्य ₹१५०

अब उपलब्ध

महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण (कोड 1589) केवल हिन्दी—हरिवंशपुराण वेदार्थ-प्रकाशक महाभारत-ग्रन्थका अन्तिम पर्व है। पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे हरिवंशपुराणके श्रवणकी परम्परा भारतवर्षमें चिरकालसे प्रचलित है। अनेक भावुक धर्मपरायण लोग इसके श्रवणसे पुत्र-प्राप्तिका लाभ प्राप्त कर चुके हैं। भगवद्भक्ति तथा प्रेरणादायी कथानकोंकी दृष्टिसे भी इसका बड़ा महत्त्व है। भगवान् श्रीकृष्णसे सम्बन्धित अगणित कथाएँ इसमें ऐसी हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। धार्मिक जन-सामान्यके कल्याणार्थ इसके अन्तमें सन्तानगोपाल-मन्त्र, अनुष्ठान-विधि, सन्तान-गोपाल-यन्त्र तथा संतान-गोपालस्तोत्र भी संगृहीत है। सचित्र, सजिल्द। मूल्य ₹३००

प्र० ति० २१-३-२०१६
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

गीताभवन (स्वर्गाश्रम)-में सत्संगका आयोजन

गीताभवन (स्वर्गाश्रम), ऋषिकेशमें गर्मीके दिनोंमें प्रतिवर्ष सत्संगका आयोजन होता रहा है। इस वर्ष भी पिछले वर्षोंकी भाँति सत्संगका विशेष आयोजन दिनांक २५ अप्रैलसे किया गया है।

सत्संगके इस कार्यक्रममें संत-महात्मा एवं विद्वद्गणोंके प्रवचन-हेतु पधारनेकी बात है। गीताभवनमें चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (८ अप्रैल)-से नवरात्रके अवसरपर सदाकी भाँति श्रीरामचरितमानसके सामूहिक नवाह्न-पाठका कार्यक्रम रहेगा। गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको अवश्य उठाना चाहिये।

गीताभवनमें संयमित साधक-जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको, जहाँतक सम्भव हो, नहीं लाना चाहिये।

सत्संगमें आनेवाले साधकोंको मतदाता पहचान-पत्र अथवा फोटोयुक्त अन्य पहचान-पत्र रखना आवश्यक है।

सामूहिक यज्ञोपवीत-संस्कार आषाढ़ शुक्ल २ (६ जुलाई २०१६)-को सम्पन्न होगा। यज्ञोपवीत लेनेवालोंको ४ जुलाईतक गीताभवन, ऋषिकेश पहुँचना चाहिये। —व्यवस्थापक, पो०-स्वर्गाश्रम—२४९३०४

उज्जैनमें महाकुम्भ एवं हरिद्वारमें अर्धकुम्भ-महापर्व

हरिद्वारमें अर्धकुम्भ-स्नानकी प्रमुख तिथियाँ

अमावस्या	चैत्र कृ० अमावस्या	७ अप्रैल	गुरु
मेष-संक्रान्ति	चैत्र शु० सप्तमी	१३ अप्रैल	बुध
अर्धकुम्भ-पुण्यकाल	चैत्र शु० अष्टमी	१४ अप्रैल	गुरु

उज्जैनमें सिंहस्थ महाकुम्भ-स्नानकी प्रमुख तिथियाँ

चैत्र शु० पूर्णिमा,	२२ अप्रैल	शुक्र	प्रथम स्नान
वै० कृ० अमावस्या	०६ मई	शुक्र	द्वितीय स्नान
अक्षयतृतीया	०९ मई	सोम	तृतीय स्नान
श्रीशंकराचार्य-जयन्ती	११ मई	बुध	चतुर्थ स्नान
वैशाख शु० पूर्णिमा	२१ मई	शनि	मुख्य शाहीस्नान

इसके अतिरिक्त अन्य प्रमुख स्नान इस प्रकार हैं—*वरूथिनी एकादशी* ३ मई, मंगलवार; *वृष-संक्रान्ति* १४ मई, शनिवार; *मोहिनी एकादशी* १७ मई, मंगलवार; *प्रदोषपर्व* १९ मई, गुरुवार; *श्रीनृसिंह-जयन्ती* २० मई, शुक्रवार।